Chapter- 6

षष्ठ अध्याय

✳ अध्याय - 6 ✳

मोहन राकेश की एकांकियों, बीज नाटकों तथा ध्वनि नाटकों का कथ्य एवं रंगशिल्प :

(i) एकांकी, बीज नाटकों एवं ध्वनि नाटकों में अभिव्यक्त राकेश का बहुस्तरीय लेखन :

मोहन राकेश की मृत्यु के उपरांत उनकी एकांकियों, बीज नाटक, पार्श्व नाटक तथा ध्वनि नाटकों के दो संग्रह प्रकाशित हुए। प्रथम 'अण्डे के छिलके, अन्य एकांकी तथा बीज नाटक' (1973) और दूसरा - 'रात बीतने तक तथा अन्य ध्वनि नाटक' (1974)। जैसाकि नाम से स्पष्ट है, पहले संग्रह में कुछ एकांकियाँ और बीज नाटक संकलित हैं, तो दूसरे में ध्वनि नाटक या रेडियो नाटक। पहले संग्रह में छतरियाँ नाम से एक पार्श्व नाटक भी संकलित है। हिन्दी साहित्यालोचन तथा शोधकार्य के क्षेत्र में ये रचनाएँ प्रायः उपेक्षित ही रही हैं और इन पर होनेवाला कार्य नगण्य है। अतः इस शोध-प्रबंध में उन पर विस्तार से चर्चा की गई है। मेरी मान्यता है कि ये एकांकियाँ, पार्श्व नाटक, बीज नाटक तथा ध्वनि नाटक मोहन राकेश के बहुस्तरीय लेखन के समर्थ उदाहरण है तथा उन पर सम्यक् विचार किए बिना मोहन राकेश की बहुमुखी प्रतिभा का सम्यक् मूल्यांकन संभव नहीं है।

(ii) 'रात बीतने तक' तथा अन्य ध्वनि नाटकों का आलोचनात्मक अध्ययन :

'रात बीतने तक' शीर्षक एकांकी 'लहरों के राजहंस' नाटक का ही प्रारंभिक रूप है। अंतर सिर्फ इतना है कि यह एकांकी अपनी समाप्ति पर सीधा और स्पष्ट संदेश देता है, जबकि लहरों के राजहंस आधुनिक युग के मनुष्य की तरह ही जटिल और संश्लिष्ट बुनावट लिए है और उसका अंत भी सांकेतिक है स्पष्ट नहीं। 'रात बीतने तक' तथा 'लहरों के राजहंस' दोनों की शुरूआत लगभग एक जैसी है। इस एकांकी में भी रूपगर्विता आत्म मुग्धा सुंदरी - निर्वाण, मोक्ष और अमरत्व की बातों की हँसी उड़ाती है और बुद्ध के प्रति लोगों के उत्साह को दूधफेन का ऊबाल कहती है। उसके अनुसार देवी यशोधरा ही गौतम बुद्ध को अपने नारीत्व के आकर्षण से बाँध न पाई और संभवतः इसी वजह से गौतम बुद्ध मुक्ति की तलाश में निकल पड़े। अपने दुर्निवार आकर्षण की शक्ति से वह भलीभाँति अवगत है और नंद पर इसका प्रभाव भी उससे छुपा नहीं है। स्त्री सुलभ आकर्षण और वाक् चातुर्य उसकी पूँजी है और यही उसके आत्ममुग्धा और रूपगर्विता होने का कारण है। वह कहती है :

"नारी का आकर्षण क्या कर सकता है, यह तू नही समझ सकती। यशोधरा भी नही समझ सकी। ज्वाला क्या कर सकती है, यह ज्वाला जानती है या वह जो उसमें जलता है।"[1]

नंद और सुंदरी जीवन के इन सुंदर क्षणों को भोगते हुए जी रहे हैं। उमर खय्याम ने कहा है कि खाने के लिए रोटी और शराब का एक प्याला और इनके साथ तुम्हारा नृत्य - तो मरूभूमि भी मेरे लिए स्वर्ग प्रतीत होगी।

नंद भी लगभग उसी प्रकार की मनःस्थिति में जी रहा है। उसके अनुसार -

"पायल, मदिरा और सुन्दरी - उनसे आगे सब शून्य है। आज मेरी कामना कितनी तृप्त है। सुन्दरी, कामना की पूर्ति का क्षण ही वास्तव में मधुमास है। यही यौवन है, यही जीवन है। मेरे रोम-रोम में आज कलियाँ चटक रही हैं। सितारें आकाश से मेरी आँखों के सामने उतर आए हैं।"[2]

वर्तमान में जीता हुआ यह प्रेमी युगल न भविष्य की चिन्ता करता है और न ही मुक्ति की, किन्तु नर्तकी चन्द्रिका देहराग पर आधारित इस प्रेम के समक्ष चुनौती बनकर खड़ी हो जाती है। उसके प्रश्न नंद और सुंदरी के शांत अभिसार को विचलित कर देते हैं। चन्द्रिका न केवल नंद द्वारा दिए गए मधुपात्र को ठुकरा देती है, अपितु रात के बीतने पर नृत्य करने से भी इनकार करती है। वह प्राणपन से अपने विश्वास के आग्रह की रक्षा करना चाहती है। वर्तमान में जीते हुए नंद तथा सुंदरी से वह कहती हैं :

"इस विश्वास का राजकुमारी, कि जीवन घड़ी-भर के उन्माद का ही नाम नहीं है। मेरा ह्रदय आज मदिरा को स्वीकार नहीं करता। मैं नर्तकी के रूप में अपने कर्तव्य का पालन करती हुई अब तक नाचती रही हूँ, परन्तु अब रात बीतने वाली है।"[3]

X X X X X X X X X

"मैं केवल इतना चाहूँगी कि वह इतनी जड़ न हो जाए कि अपने वर्तमान को ही सब कुछ समझ बैठे।"[4]

X X X X X X X X X

"मुझे जिस जीवन का मोह है, राजकुमारी, वह दिन और घडियों में बँटा हुआ जीवन नहीं है। उस मोह के लिए आप मुझे नहीं नचा सकतीं। परन्तु मैं आपके दिए हुए मूल्य का दावा मानती हूँ। उस मूल्य से खरीदी हुई नर्तकी अवश्य नाचेगी।"[5]

गौतम बुद्ध से प्रभावित चन्द्रिका के ये मूल प्रश्न नंद को कहीं भीतर तक आहत करते हैं और जीवन की क्षणभंगुरता का अहसास मुरझाये और मसले फूलों को देखकर उसे होने लगता है। रात्रि का प्रगाढ़ अंधकार नंद को घेरने लगता है और उसके अंतर्मन की आवाज उसे धिक्कारने लगती है। कामोत्सव की रात ढलने पर नंद को उदास कर देती है और गौतम बुद्ध एवं भिक्षुओं की मंडली को उनके द्वार से भिक्षा का न मिलना नंद को विचलित कर देता है। क्षमा माँगने के इरादे से नंद सुंदरी से नदी तट पर जाने की आज्ञा मांगते हैं और आत्मगर्विता सुंदरी नंद को इजाजत दे देती है। सुंदरी के विशेषक के सूखने से पहले लौटने का वचन दे नंद

नदी तट की ओर प्रस्थान करते हैं। काफी अंतराल के बाद भी जब नंद नहीं लौटते, तो सुंदरी का आहत विश्वास और स्वाभिमान इस सत्य को स्वीकार नहीं कर पाता। तभी भिक्षुओं की मंडली फिर एक बार उनके द्वार पर आती है और उस मंडली के साथ नंद भी है। नंद ने अपने जीवन की दिशा भिक्षु वेश स्वीकार कर बदल ली और वही आग्रह सुंदरी से करने वह लौटता है :

"तुम बहुत कुछ दे सकती हो सुंदरी। तुम्हें अपने रूप पर गर्व है न ! आज वह गर्व इस भिक्षापात्र में डाल दो। तुम्हें अपनी सुखकामना ही सबसे बड़ी कामना प्रतीत होती है न ? आज उस कामना को भी भिक्षा में दे डालो। रात बीत चुकी है, सुन्दरी, मैंने अपने अंतर का अंधकार गौतम बुद्ध के भिक्षापात्र में डाल दिया है। तुम अपने अन्तर का अंधकार मेरे भिक्षापात्र में डाल दो।"[6]

इस एकांकी में चन्द्रिका के माध्यम से रचनाकार ने क्षणवादी एवं उपभोग पर आधारित जीवन-दृष्टि पर प्रश्नचिन्ह लगाया है। जीवन की क्षणभंगुरता का अहसास और कामनाओं की पूर्ति का खोखलापन ही नंद को भिक्षु वेश धारण करने के लिए प्रेरित करता है।

इस एकांकी का रूप विन्यास सुगठित है। अधिकांशतः छोटे परंतु स्वयं संपूर्ण वाक्यों का प्रयोग किया गया है। सुन्दरी के एकमात्र लम्बे स्वगत कथन को छोड़कर शेष संवाद संक्षिप्त और प्रत्यक्ष हैं। न ही विषय वस्तु और न ही शिल्प के स्तर पर इस एकांकी में किसी प्रकार की जटिलता है। जीवन में बुनियादी प्रश्नों को बिना किसी लफ्फाजी के राकेश ने सीधेसादे कथा-सूत्र में पिरोकर एक निश्चित अन्त दिया है। उनके नाटकों की तरह इस एकांकी में किसी प्रकार की अस्पष्टता और अनिश्चितता नहीं है। पात्र योजना बहुस्तरीय नहीं है। सिर्फ नंद को छोड़कर सभी पात्र काले या सफेद में स्पष्ट नज़र आते हैं और उनमें समकालीन जीवन की जटिलता और संश्लिष्टता के दर्शन नहीं होते। भाषा में निश्चय ही वह सर्जनात्मक उन्मेष नहीं है जो राकेश के नाटकों में देखने को मिलता है, लेकिन इसका पूर्वाभास उसमें अवश्य दिखाई पड़ता है। विरामचिन्हों, विस्मयबोधक चिन्हों, प्रश्नवाचक वाक्यों, अंतराल अपूर्ण वाक्यों इत्यादि का प्रयोग इसमें विविध पात्रों की मनःस्थिति को उद्‌घाटित करने के लिए किया गया है। इन युक्तियों का रचनात्मक उपयोग राकेश ने आगे चलकर अपने नाटकों में किया है।

संवेदना और शिल्प के स्तर पर कुल मिलाकर यह एक औसत रचना है, जिसका प्रौढ़ एवं विस्तारित रूप हमें 'लहरों के राजहंस' नाटक में देखने को मिलता है।

.. .. .. जैसाकि नाम से स्पष्ट है, 'कँवारी धरती' एक ऐसी अविवाहित माँ की कहानी पर आधारित एकांकी है, जो प्यार में असफल होने पर भी अपने दायित्व को पूरी निष्ठा से निभाती है। एक संभ्रांत एवं आधुनिक परिवार की बेटी होने पर भी रजनी युवावस्था में एक ऐसी भूल कर बैठती है, जिसका भ्रूण-हत्या के अलावा और

कोई समाधान नहीं है। घर पर उसके रिश्ते की बात चल रही है और ऐसे में उसके आधुनिक पिता 'रामचरण' अपनी बेटी की इस भूल का व्यावहारिक समाधान कर उसके जीवन को सँवारना चाहते हैं :

"कौन-सी ऐसी चीज़ है जिसका हल नहीं है ? लोग जात-पात, ऊँच-नीच गिनते होंगे, मैं नहीं गिनता। तेरी खुशी से बड़ी मेरे लिए क्या चीज़ हो सकती है ? .. .. तू नहीं जानती, बेटी कि लोगों से तेरी चर्चा सुन-सुनकर मेरा दिल कितना उँचा होता है ! "[7]

अपनी बेटी पर गर्व करने वाले रामचरण को जब रजनी के बिन-ब्याही माँ बनने का पता चलता है, तो वह एक मजबूर पिता की तरह सामाजिक शंकाओं के डर से उसे भ्रूण हत्या की ही सलाह देता है। परन्तु रजनी इस अवसरवादी विकल्प को अस्वीकार कर देती है। रामचरण उसे सामाजिक मर्यादा समझाते हुए कहते हैं : "परन्तु जीवन का यथार्थ तेरी इस भावुकता की अपेक्षा कहीं बड़ा और कहीं रूखा है। हर समाज की कुछ लकीरें होती हैं, जिनसे वह हटते-हटते ही हटता है। अगर तुम एक ही दिन में उसे उसकी लकीरों से दूर ले जाना चाहो तो वह तुम्हें ठुकरा देता है। तूने अभी जिन्दगी देखी नहीं है। .. .. और हर बात में मैंने जो तूने चाहा वही किया है। पर आज बरसों के बाद मुझे आदेश देकर तुमसे कुछ कराना होगा।"[8]

रजनी की जैसी स्थिति में शायद कोई भी आम लड़की अपने पिता की सलाह मान लेती क्योंकि ऐसा करने पर उसके सामने सुखद भविष्य होगा। परंतु रजनी इस मायने में असाधारण है कि वह अपनी भूल पर पछताने के बावजूद परिवार के स्नेह, सामाजिक स्वीकृति और सुखद भविष्य के सपने को ठुकरा देती है। वह अपने भीतर पल रहे सत्य को किसी सूरत में झुठलाना नहीं चाहती और उसे जन्म दिए बिना मृत्यु की शरण भी लेना नहीं चाहती। इस वजह से लोक अपवाद एवं सामाजिक तिरस्कार सहन करते हुए भी वह बच्चे को जन्म देती है और उसके पश्चात् अपने प्राणों का होम कर देती है।

यह एकांकी एक सामाजिक समस्या के इर्द-गिर्द बुना गया है और बिन-ब्याही माँ की मनःस्थिति के विविध रूपों को उद्घाटित करता है। युवावस्था में प्रेम में छले जाना कोई नई बात नहीं है, किन्तु इसका दंड हमेशा स्त्री को ही मिलता है। यह एकांकी स्त्री और पुरूष के लिए समाज द्वारा बनाए गए दोहरे मानदंडों का भी पर्दाफाश करता है। एक स्तर पर यह एकांकी रजनी के माध्यम से एक आधुनिक स्त्री के जुझारूपन और समझौता न करने की मानसिकता को दर्शाता है। दूसरी ओर 'रामचरण' के रूप में एक संवेदनशील और आधुनिक पिता का अपनी बेटी के प्रति लगाव तथा सामाजिक मर्यादा के बीच द्वन्द्व की स्थिति को भी दर्शाया गया है। दरअसल समकालीन जीवन में सबसे ज्यादा उन्हें ही भोगना पड़ता है, जो समझौता नहीं कर पाते हैं। स्वयं राकेश ने समकालीन जीवन के इस यथार्थ को लक्षित करते हुए लिखा है :

"लेकिन ऐसे लोग जो अन्य अधिकांश लोगों की तरह समझौता करने की इच्छा नहीं रखते, अपनी पूर्ण मानसिक बुनावट या पूर्ण इनवाल्वमेंट के कारण दूसरों की तुलना में अधिक भोगते हैं।"[9]

रजनी की माँ सुभागी एक ही ढर्रे पर सोचती है, इसलिए ऐसा पाप उसकी नज़रों में अक्षम्य है। वह पारंपरिक भारतीय नारी का प्रतिनिधित्व करती है। विजय एक कमजोर और मौका परस्त युवक है जो बातें तो बड़ी-बड़ी करता है लेकिन उसकी कथनी और करनी में काफी अंतर है। सच को जानने पर भी वह स्वयं को अपराधी नहीं समझता और बेशर्मी से रजनी से अपने अपराध का प्रमाण माँगता है। कोरी बयानबाजी ओर लफ्फाजी करने वाले ऐसे मौकापरस्त मध्यवर्गीय युवक का इस एकांकी में निरावरण किया गया है। त्रिलोचन और विलोचन पंडिताई के माध्यम से अपनी जीविका चलाते हैं, अतः ग्राहकों को फँसाना उनकी मजबूरी है। धन के लालच में ही विलोचन रजनी को अपने घर ले जाता है, पर सामाजिक भय और तिरस्कार सहने के बाद एक दिन उसकी पत्नी रजनी को घर से निकाल देती है। तमाम मुसीबतों को सहने के बाद भी रजनी बच्चे को जन्म देती है, पर उस बच्चे का हश्र भी एक नाजायज संतान की तरह ही होता है, जिससे सभी लोग उपेक्षा और घृणा ही करते हैं। इस प्रकार इस एकांकी में न केवल बिन ब्याही माँ के दर्द को दर्शाया गया है, बल्कि उसकी कोख से जन्म लेने वाली संतान की नियति का भी संकेत किया गया है। समकालीन जीवन की महत्वपूर्ण समस्या पर आधारित होने के कारण यह रचना आज भी अत्यंत प्रासंगिक बनी हुई है। किन्तु नाटक का अंत स्वाभाविक प्रतीत नहीं होता क्योंकि रजनी जैसी जुझारू युवती का अंत में प्राण दे देना उसकी चरित्रगत विशेषताओं से मेल नहीं खाता और दर्शक उसे सहज रूप में आत्मसात नहीं कर पाता।

इस एकांकी का नामकरण प्रतीकात्मक है। जिस प्रकार धरती अनेक तरह की बाधाओं का सामना करते हुए भी अपने गर्भ में छिपे बीज को आकार देती है और सदा निर्मल बनी रहती है, उसी प्रकार रजनी के रूप में एक स्त्री अनेक तरह के कष्टों को सहते हुए भी अपने बच्चे को जन्म देती है :

"जीवन में भी कभी बादल घिर आते हैं, मेह बरसता है, कभी कीचड़ हो जाता है .. .. और उसके बाद ? उसके बाद फिर सब कुछ निर्मल हो जाना चाहिए .. ..। धरती तो सदा कुमारी है। उसे मैला करके देखनेवाली आँख ही तो मैली होती है।"[10]

यह यथार्थवादी शिल्प में रचित एक समस्या नाटक है, जो सीधे-सादे अंदाज में समकालीन जीवन की एक महत्वपूर्ण समस्या को उद्घाटित करता है। नाटक की बुनावट सरल है। ध्वनिनाटक होने की वजह से इसमें चाक्षुष बिम्बों का प्रयोग नगण्य है। श्रव्य बिम्बों का रचनाकार ने अत्यंत कुशलतापूर्वक उपयोग किया है। यही नहीं, रंग संकेतों में भी ध्वनि संबंधी संकेत ही सर्वाधिक हैं, जो शब्द और ध्वनि के प्रति नाटककार के अतिशय लगाव एवं सजगता को दर्शाता है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं :

"अन्तराल में कुछ देर सस्पेंस का संगीत। बहुत दूर कुत्तों के भौंकने की और पहरेदार की जागते रहो की आवाज।"[11]

"दरवाजे के खुलने और बंद होने का शब्द। सीढियों पर हल्की-हल्की पैरों की आवाज़। फिर एक दरवाज़े के चिरमिराने का शब्द। कुत्तों के भौंकने और पहरेदार की आवाजें पास आ जाती हैं।

अन्तराल संगीत।

एक गाड़ी के स्टेशन पर आकर रूकने का शब्द और प्लेटफार्म की आवाजें :

पान-बीड़ी सिगरेट ! चिया गरेम ! पूरी गरम पूरी ! अखबार पढिए अखबार ! इत्यादि।

फिर बहुत सी मिली-जुली आवाजें :

जय गंगा मैया की ! "[12]

इस नाटक की एक अन्य विशेषता पात्रानुकूल भाषा है। रजनी के संवादों में भाषा का तेवर प्रायः आलंकारिक और भावना प्रधान है, जबकि अन्य पात्रों की भाषा सपाट और प्रत्यक्ष है। कई स्थानों पर विस्मयबोधक और विराम चिन्हों के माध्यम से लोगों की सामाजिक धार्मिक रूढि तथा अजनबी बच्चे के प्रति घृणा और उपेक्षा भाव को दर्शाया गया है, यथा - हरि हरि हरि ! शिव शिव शिव ! छिः छिः छिः! इत्यादि। प्रश्नवाचक वाक्यों, अपूर्ण वाक्यों एवं अंतराल के माध्यम से व्यक्ति के मन में व्याप्त संशय, क्षोभ एवं हताशा की स्थिति को सफलतापूर्वक उद्घाटित किया गया है, जैसे : रजनी के निम्नलिखित संवाद में :

"इस विस्तार और इन ध्वनियों में मन डूब जाता है। परन्तु चारों ओर इतना कलुष क्यों है ? हृदय इतने बन्द क्यों है ? सब लोग इतने बेगाने क्यों हैं ? .. .. यदि आज अपने घर जा सकती ! .. .. माँ की गोद में सिर रखकर रो सकती ! .. .. और एक बार .. .. एक बार .. .. उन्हें देख सकती ! "[13]

समग्रतः यह कहा जा सकता है कि 'कँवारी धरती' यथार्थवादी शिल्प में रचित यथार्थवादी अन्तर्वस्तु का नाटक है। नाटक का अंत विश्वसनीय न होते हुए भी इसमें वर्णित समस्या समकालीन जीवन की ज्वलंत समस्या है। भाषा प्रभावशाली एवं प्रत्यक्ष है। मनुष्य की मनःस्थिति को असरदार ढंग से व्यक्त करने के लिए प्रश्नवाचक वाक्यों, अपूर्ण वाक्यों, अंतराल, विराम चिन्हों जैसी अनेक नाटकीय युक्तियों का प्रयोग किया गया है। नाटक में मौजूद ध्वनि संकेत अत्यंत प्रभावशाली हैं जो परिवेश को विश्वसनीय बनाने का काम करते हैं। कुल मिलाकर राकेश का यह नाटक बहुस्तरीय नाटक न होने के बावजूद उनकी कई शिल्पगत विशिष्टताओं को धारण किए हुए हैं।

राकेश के रेडियो रूपांतरणों में 'उसकी रोटी' एक श्रेष्ठ ध्वनि नाटक है जो उसी शीर्षक से लिखी गई उनकी कहानी पर आधारित है। नाटक की कथा काफी

संक्षिप्त है। सुच्चासिंह बालो का पति है और पेशे से बस ड्राइवर है। वह सिर्फ बुधवार को अपनी पत्नी से मिलने गाँव आता है और अपनी तनख्वाह से मात्र बीस रूपये घर खर्च के लिए भेजता है। एक पति के रूप में जीवन में उसने इससे अधिक कुछ नहीं किया। उसके चरित्र को लेकर अनेक कहानियाँ हैं कि उसने एक चमारी साथ में रखी हुई है। कोई उसे नामुराद कहता है, कोई जानवर तो कोई कुछ और। दूसरी ओर भोली बालो है, जो अपना पतिव्रता धर्म पूरी निष्ठा से निभाती है और अपनी जवान बहन के साथ अकेली रहती हुई तमाम परेशानियों से खुद ही निपटती है। चाहते हुए भी सुच्चासिंह को वह जंगी द्वारा अपनी बहन से छेड़खानी के बारे में नहीं बता पाती, सिर्फ इस डर से कि अपने घरेलू झंझटों में बार-बार उसे घसीटने से कहीं वह अनमना हो घर आना न छोड़ दे। जंगी द्वारा जिंदा को छेड़ने की वजह से उस दिन वह सही समय पर सुच्चासिंह की रोटी लेकर बस स्टॉप पर नहीं पहुँच पाई जिससे सुच्चासिंह नाराज होकर बस लेकर चला गया। शाम की रोटी बालो जल्दी-जल्दी बनाकर जिंदा को साँकल अंदर से बंद करने की सलाह दे बस अड्डे पर जाकर खड़ी हो गई। पर सुच्चासिंह उसे नज़रअंदाज करता हुआ बस लेकर जालंधर की तरफ निकल गया। वह बेचारी थकी तो थी ही निढाल हो गई। लौटकर जब सुच्चासिंह फिर बस लेकर आया तब तक बहुत रात हो चुकी थी लेकिन बालो रोटी लेकर अपने पति का वहीं इंतजार कर रही थी। इस बार सुच्चासिंह का पत्थर दिल भी कुछ नरम पड़ा और वह एहसान के स्वर में बुधवार को घर आने का वायदा कर बस लेकर चला गया। पति तक रोटी पहुँचाना बालो का दैनंदिन कार्य व्यापार है, पर बालो के लिए यह महज एक काम नहीं है। यह उसकी निष्ठा एवं प्रेम का समन्वित रूप है। इस प्रकार रोटी पहुँचाना मात्र एक घटना न होकर एक ऐसा सूत्र है, जिस पर बालों का दाम्पत्य जीवन टिका हुआ है। भोली बालो में प्रतिदान की चाह बस इतनी ही है कि उसका पति उससे विलग न हो।

अपनी अधिकांश रचनाओं से अलग हटकर राकेश ने इस नाटक में ग्रामीण परिवेश में स्त्री:पुरुष संबंध का उद्‌घाटन किया है। राकेश की अधिकांश रचनाओं का ताना-बाना शहरी मध्यमवर्ग के इर्द-गिर्द केन्द्रित रहा है। इसलिए अनेक आलोचक उनकी विषय-वस्तु को सीमित और भारतीय जीवन के छोटे दायरे में केन्द्रित मानते हैं। लेकिन विवेच्य नाटक में रचनाकार ने एक नयी पृष्ठभूमि को चुना है, जिससे इस नाटक में एक प्रकार की ताज़गी का अहसास होता है और नाटककार की वैविध्यपूर्ण दृष्टि का।

बालो एक ओर आर्थिक रूप से अपने पति पर निर्भर है तो दूसरी ओर उसे विरासत में परंपरागत भारतीय जीवन के संस्कार मिले हैं, जिसके अनुसार पति की सेवा एक स्त्री का सबसे बड़ा धर्म है। इसलिए बालो के चरित्र में अपने पति के प्रति अटूट निष्ठा एवं सेवाभाव सन्निहित है। उसे न तो अपनी अस्मिता का बोध है और न ही परिस्थितियों से विद्रोह की आकांक्षा। इस नाटक में रचनाकार ने सामान्य मनुष्य के सद्‌गुणों की शक्ति को दिखाने का प्रयास किया है। बालो का भोलापन एवं अटूट

निष्ठा सुच्चासिंह जैसे जड़ एवं संवेदनहीन व्यक्ति को भी परिवर्तित होने के लिए विवश करती है। इस नाटक में आदर्शवादी यथार्थ की छाया स्पष्ट नज़र आती है, जो मूलतः गांधीजी के जीवन-दर्शन पर आधारित प्रतीत होती है। गाँधी के अनुसार बुराई को पराजित करने का सबसे कारगर तरीका अच्छाई है। मनुष्य का सद्‌गुण ही एक सीमा के बाद बुराई को तोड़ता है। लेकिन आदर्शमूलक जीवन दृष्टि पर आधारित होते हुए भी इस रचना में ग्रामीण-जीवन के कटु यथार्थ को प्रभावशाली तरीके से अभिव्यक्त किया गया है। आर्थिक विपन्नता के माहौल में अकेली स्त्री द्वारा घर चलाना अत्यंत दुष्कर कार्य है, जिसे बालो की जीवन-प्रक्रिया में स्पष्ट लक्षित किया जा सकता है। जीवनयापन की आधुनिक सुविधाओं से वंचित गाँव में रोटी पकाना भी एक आसान काम नहीं है, बल्कि दिन का अधिकांश समय इसी में व्यतीत हो जाता है। रोटी पकाने से लेकर तपती धूप एवं धूल भरी आँधी के बीच एक कोस की यात्रा करना बालो का दैनिक कार्य है। इस नाटक में ग्रामीण समाज में फैले व्यभिचार तथा युवती की असुरक्षित स्थिति को भी रेखांकित किया गया है। जंगी द्वारा जिंदा को छेड़ने की घटना इस तथ्य को पुष्ट करती है।

इस नाटक का रूपबंध सुगठित और यथार्थवादी है। चूँकि यह पंजाब के गाँव को केन्द्र में रखकर लिखा गया है, इसलिए इसमें पंजाबी भाषा की बहुलता है। पंजाबी भाषा एवं पंजाबी लोकगीतों के माध्यम से रचनाकार ने न केवल ग्रामीण पृष्ठभूमि को सफलतापूर्वक दर्शाया है, बल्कि लोकरंग की सृष्टि द्वारा इसमें एक प्रकार की ताज़गी भी मिलती है। 'हीरे की कणी', मुच्चर, मुटियार, वीरां, सोहणी' जैसे पंजाबी भाषा के शब्दों का अत्यन्त कुशलतापूर्वक प्रयोग किया है। इसके अलावा नामुराद, जम्हाई, कमज़ात, तैश, नसीब आदि उर्दू शब्दों के द्वारा भी भाषा को सहज एवं स्वाभाविक रंग प्रदान किया गया है। ग्रामीण जीवन को जीवंत रूप प्रदान करने के लिए लोकभाषा के मुहावरों का भी रचनात्मक उपयोग किया गया है।

नाटक में सीधे-सादे एवं जीवन से प्रत्यक्ष तौर पर जुड़े चरित्रों को उभारा गया है। इस नाटक के पात्रों में शहरी व्यक्ति जैसी न तो जटिलता है न ही आभिजात्य एवं झूठा अभिमान। पात्र जीवन से सीधे तौर पर जुड़े हैं अतः उनकी भाषा में अधिकांशतः आभिजात्य और कलात्मकता नहीं है सिवाय उन प्रसंगों के जहाँ बालो अपने प्रारंभिक जीवन का स्मरण करती है। यहाँ भाषा का रूप सौम्य और रागात्मक है :

"साँझ इतनी सुन्दर है, आसमान में कितने रंग फैले हैं, और दाना चुगकर लौटती हुई चिड़ियाँ सुनहरे पंख फड़फड़ाती हुई आ रही है, फिरभी अपने अकेलेपन से डर क्यों लगता है ? दिल बैठता क्यों जाता है ? वे भी तो दिन थे .. .. वे बीते दिन .. .. जब ऐसी ही साँझ होती थी, ऐसे ही चिड़ियाँ लौटकर आया करती थीं सुक्खू का रहट चल रहा होता था, पानी की मोटी धार के नीचे बैठकर कान पर हाथ रखे हुए माहिया गाया करता था।"[14]

लेकिन जीवन के संघर्ष और परिस्थितियों की मार ने इस हीरे की कणी को आत्मरक्षा एवं अपनी बहन की आबरू की रक्षा हेतु रूखा एवं आक्रामक बना दिया है। बालो का चरित्र राकेश के अन्य स्त्री पात्रों से इस मायने में विशिष्ट है कि वह ग्रामीण परिवेश में एक अकेली स्त्री के जीवनसंघर्ष को दर्शाता है। वह एक कर्मठ और जुझारु निम्नवर्गीय नारी पात्र है, जो तमाम तरह की समस्याओं के बावजूद न तो जिंदगी से पलायन करती है और न ही निराशा को अपने ऊपर हावी होने देती है। अकेलेपन का दर्द और असुरक्षा की भावना उसे सताती तो है, लेकिन इनके आगे वह परास्त नहीं होती। अपनी बहन जिंदा की रक्षा में उसका रूप अत्यंत आक्रामक हो जाता है और ऐसे में वह धाराप्रवाह गालियों का प्रयोग करती है :

"मुआ - कमजात ! मुए को अपनी माँ रंडी नहीं सोहणी लगती ? मुए तेरी नजर में कीड़ें पड़ें ! निपूते, तेरे घर में लड़की होती तो इससे बड़ी होती, तेरे दीदें फटें।"[15]

इस प्रकार बालो का चरित्र एक ओर 'वज्रादपि कठोराणि' है तो दूसरी ओर 'मृदुणि कुसुमादपि'। सुच्चासिंह के माध्यम से एक बस ड्राइवर के वर्गीय चरित्र को उद्घाटित किया गया है। वर्ग विशिष्ट का प्रतिनिधि चरित्र होने के नाते उसमें वे सभी कमजोरियाँ मौजूद हैं, जो आमतौर पर एक बस-ड्राइवर में पाई जाती हैं। 'जिंदा' के रूप में नाटककार ने एक असुरक्षित एवं सहमी हुई ग्रामीण युवती का निरूपण किया है तो 'जंगी' के माध्यम से उम्रदराज शोहदे व्यक्ति का।

इस नाटक में पूर्वदीप्ति का इस्तेमाल एक कारगर रंगयुक्ति के रूप में किया है। स्वगत कथनों का प्रयोग व्यक्ति के अंदर चल रहे आत्ममंथन को दर्शाता है। कुल मिलाकर यह एक कसा हुआ और सफल रेडियो रूपांतरण है। यद्यपि इसकी कथावस्तु समसामयिक और अनिवार्य प्रतीत नहीं होती फिर भी मानवजगत के आंतरिक सौंदर्य को उद्घाटित करने के कारण इसे एक अच्छा नाटक कहना चाहिए।

'सुबह से पहले' मोहन राकेश द्वारा रचित एक अन्य ध्वनि नाटक है, जो मनुष्य के भीतर बसे डर को पूरी प्रामाणिकता के साथ उद्घाटित करता है। महेन्द्र नामक एक व्यक्ति प्रकाश और लीला के घर में एक रात के लिए ठहरा हुआ है। प्रकाश के भाई राज ने गाँव का एक आदमी बताकर महेन्द्र को उनके घर में एक रात के लिए पनाह दी है। यद्यपि सुबह होने से पहले ही महेन्द्र को चला जाना है फिर भी उसे लेकर जो संभ्रम, संदेह और असुरक्षा की मनःस्थिति प्रकाश और लीला में है उसका रचनाकार ने कुशल उद्घाटन किया है। नाटक की पृष्ठभूमि सन् 1942 का भारत छोड़ो आंदोलन है जिसमें व्यापक रूप से ब्रिटिश संस्थानों पर आक्रमण एवं तोड़-फोड़ की घटनाएँ हुई थीं। प्रकाश का भाई राज ऐसे ही एक क्रांतिकारी दल का सदस्य है, जो ब्रिटिश शासन व्यवस्था के बुनियादी ढाँचे को खत्म कर अंग्रेजों को भारत से बाहर खदेड़ देना चाहते थे। दूसरी ओर महेन्द्र उस समय का एक ऐसा मनुष्य है जो देश की स्वतंत्रता तो चाहता है लेकिन उसके लिए क्रांतिकारी दलों द्वारा अपनाए गए तरीकों से वह सहमत नहीं है, उसके अनुसार जिन इमारतों और

संस्थानों को ये बागी तोड़-फोड़ कर नष्ट कर देना चाहते हैं वह इसी देश के अंग है। इस प्रकार इस नाटक में स्वाधीनता आंदोलन के दौरान विकसित दो भिन्न प्रकार की राजनैतिक विचारधाराओं की टकराहट को भी दर्शाया गया है। इस नाटक में राज क्रांतिकारी दल का प्रतिनिधि सदस्य है तो महेन्द्र की विचारधारा नरम-दल से मेल खाती है। इन विचारधाराओं के संघर्ष को रचनाकार ने महेन्द्र और राज के संवाद के माध्यम से अत्यंत सफलतापूर्वक व्यक्त किया है :

"राज : तुम्हारा नाम क्या है ?

महेन्द्र : महेन्द्र ! क्यों ?

राज : कुछ नहीं, वैसे ही पूछ रहा हूँ। क्योंकि तुम भी हमारे साथी हो ।

महेन्द्र : मैं कह नहीं सकता कि मैं तुम्हारा साथी हूँ या नहीं। तुम इस गली में क्या कर रहे थे ?

राज : कुछ पोस्टर चिपका रहा था । .. .. और तुम ?

महेन्द्र : मैं ? मैं एक सरकारी इमारत के दरवाजे से सटकर खड़ा था।

राज : सरकारी इमारत से सटकर खड़े थे ? किसलिए ? (धीरे स्वर में) उसे उड़ाने के इरादे से ?

महेन्द्र : नहीं। .. .. कुछ लोग उसे आग लगाना चाहते थे। मैं उन्हें रोकने की कोशिश कर रहा था।

राज : रोकने की कोशिश कर रहे थे ? तो तुम .. ..?

महेन्द्र : क्या कहना चाहते थे ? तो मैं देशद्रोही हूँ ?

राज : देश द्रोही नहीं .. ..।

महेन्द्र : उससे भी बढ़कर हूँ। पर दोस्त, हमारा देश इस देश से बाहर तो कहीं नहीं है। हम जिन्हें जलाते-फूँकते और लूटते हैं, वे सब अपने देश के ही तो भाग हैं। यदि कोई हमारे शरीर को जकड़ ले तो क्या उसे दूर करने का यह उपाय है कि हम अपने शरीर को ही नष्ट करने लगें ?

राज : मैं इस समय तर्क में नहीं पड़ना चाहता। मैं जानता हूँ कि विदेशियों को इस समय देश से निकालने का यही एक रास्ता है। जो इस रास्ते पर नहीं चलना चाहता, वह बुजदिल है।"[16]

लेकिन वैचारिक स्तर पर एक दूसरे से असहमत होते हुए भी, ये दोनों अनजान व्यक्ति जान पर खेल कर एक दूसरे की सहायता करते हैं क्योंकि दोनों का उद्देश्य एक ही है और वह है देश की स्वाधीनता। दूसरी ओर प्रकाश और लीला जैसे आत्मकेन्द्रित व्यक्ति हैं जो हमेशा संभ्रम, संशय और भयाक्रांत मनःस्थिति में जीते हैं। वे ऐसे व्यक्ति हैं जिनका देश और समाज से कोई सरोकार नहीं है और स्वयं की

सुख-सुविधा उनके लिए सर्वोपरि है। यही कारण है कि वे महेन्द्र को गलत समय बताकर घर से विदा कर देते हैं। इस प्रकार नाटककार ने इस नाटक में दो अलग-अलग मानसिकताओं को समानान्तर रूप से नियोजित किया है। लेकिन स्वाधीनता आंदोलन की पृष्ठभूमि पर आधारित होने के बावजूद यह नाटक विश्वसनीय प्रतीत नहीं होता और किसी बुनियादी मानवीय पीड़ा या समस्या को उद्घाटित नहीं करता।

नाटक का रूपबंध सुगठित है लेकिन एक ओर प्रकाश और लीला का आंतरिक उद्वेग एवं संशय तो दूसरी ओर राज और महेन्द्र के स्वाधीनता के लिए किए जा रहे प्रयासों का समानान्तर नियोजन स्वाभाविक प्रतीत नहीं होता। यह नाटक की आन्तरिक संगति और अन्विति में बाधा उत्पन्न करता है। प्रकाश और लीला के प्रसंग में अधिकतर प्रश्नवाचक चिन्हों, विरामचिन्हों और अन्तरालों का प्रयोग किया गया है जिसके माध्यम से रचनाकार ने उनकी भयाक्रांत अनिश्चित और संभ्रमपूर्ण मनःस्थिति को अभिव्यक्त किया है। शेष प्रसंगों में नाटक की भाषा प्रत्यक्ष है और उसमें किसी प्रकार की बहुस्तरीयता के दर्शन नहीं होते। ध्वनि नाटक होने के कारण इसमें ध्वनियों और शब्दों में मौजूद ध्वनि सौंदर्य को कुशलतापूर्वक नियोजित किया गया है। रंग संकेतों में भी प्रकाश व्यवस्था, मंच संबंधी तथा वस्त्र विन्यास संबंधी संकेत बहुत कम हैं और ध्वनि संकेतों की प्रधानता है। यथा :

"प्रवक्ता की आवाज़ :

आज से बारह साल पहले की एक बात। शहर से दूर बस्ती के एक छोटे से घर में ...। दूर एक कुत्ते के भौंकने का शब्द सुनाई देता है। फिर उतनी ही दूर एक पहरेदार के शब्द सुनायी देते हैं - जागते रहो जी । जागते रहो। हवा की साँय-साँय। बहुत पास घड़ी एक बजाती है। कोई चारपाई पर करवट बदलता है।"[17]

कुल मिलाकर यह एक औसत नाटक है, जिसमें संवेदना और रूपबंध दोनों ही धरातलों पर किसी विशिष्ट सर्जनात्मक उन्मेष के दर्शन नहीं होते।

'दूध और दाँत' राकेश का एक अन्य ध्वनि नाटक है जिसमें रावी का बाँध टूटने के बाद उपस्थित मानवीय संकट के विविध रूपों को उद्घाटित किया गया है। गाँव में तेजी से पानी बढ़ रहा है। पानी के बढ़ने की गति इतनी तीव्र है कि लोग बिना कुछ सोचे-समझे घर-बार छोड़कर पलायन कर रहे हैं। ईसर काका राजू और उसके बच्चों को लेकर बहुत चिंतित है। करतारे ने राजू और बच्चों का दायित्व ईसर काका पर छोड़ा था और प्राकृतिक आपदा के इस समय वह अपने कर्तव्य से पलायन नहीं करना चाहते। राजकरनी अभी तक स्थिति की गंभीरता का अंदाजा ठीक प्रकार नहीं लगा पाई है, वह अपना घर, ढोर, जानवर, खेत, खलिहान एवं ईसर काका किसी को भी छोड़कर जाना नहीं चाहती पर काका जिद कर पाशी, लाली और संतोष के साथ उसे भेज देते हैं। बच्चों की भूख राजकरनी को मजबूर करती है कि वह पाशी को खाने की तलाश में भेजे। दर्शन एक ऐसा मौक़ापरस्त आदमी है जो अवसर को भुनाना जानता है। वह भूखे बच्चों की माँ की मजबूरी का फायदा उठा

बदले में उन्हें रोटियाँ देने की पेशकश करता है। राजकरनी तो उसके प्रस्ताव को ठुकरा देती है पर पाशी बच्चों की भूख के आगे झुक जाती है। रास्ते में लाली की भूख उसके तीखे दाँतों में परिवर्तित होकर राजकरनी को घायल कर देती है। दूध न मिलने की वजह से लाली जगह-जगह अपनी माँ को काट लेता है, उसके अनेक घाव कर देता है। लाचारी, खीझ, मजबूरी और स्थिति के हाथ लगातार हारने के कारण राजकरनी लाली को रास्ते में छोड़ देती है कि कोई अन्य परिवार जो उनकी तरह खस्ताहाल न होगा उसका लालन-पालन कर लेगा पर स्टेशन पर पहुँचते ही पछतावा उसे खाने लगता है। उसकी छाती दूध से भर जाती है और वह अपने बच्चे की याद में पागल सी होने लगती है। सामने बैठी एक अधेड़ उम्र की औरत के पास उसे लाली जैसा बच्चा दीखता है - जो वास्तव में उसका लाली ही है। पाशी के लाख मना करने पर भी वह लाली को ले भागती है और चारों गाड़ी पकड़कर स्टेशन जाने की बजाय फिर से गाँव की ओर लौट पड़ते हैं। नाटक की पृष्ठभूमि गाँव से संबंधित है और प्राकृतिक आपदा के समय मनुष्य की पाशविक एवं मानवीय दोनों वृत्तियों को सूक्ष्मता से दर्शाती है। पाशविक वृत्ति का उदाहरण है बच्चों की चोरी की घटनाएँ, रोटी देने के बहाने मजबूरी का फायदा उठाना इत्यादि तो मानवीय मूल्यों को स्थापित करने वाले कई लोग भी हैं जैसे : ईसर काका, अधेड़ उम्र की वह स्त्री जो खस्ताहाल होते हुए भी लाली को अपने साथ ले आई।

यह नाटक एक अन्य स्तर पर 'माँ' की नैसर्गिक ममता को भी रेखांकित करता है। बच्चे द्वारा काफी तंग किए जाने से प्रारंभ में राजू उसे रास्ते में छोड़ तो आती है लेकिन उसका मातृसुलभ मन लाली के बगैर बेचैन हो उठता है और हर तरह का जोखिम उठाकर भी वह अपने बच्चे को वापस ले आती है। इस नाटक के माध्यम से रचनाकार ने यह दर्शाने की कोशिश की है कि प्राकृतिक आपदा एक ओर मनुष्य को तोड़ती है तो दूसरी ओर उसके अन्दर के श्रेष्ठ मानवीय गुणों को भी उभारती है। प्राकृतिक आपदा से जूझते हुए राजू के संवादों में जिजीविषा और अपने घर और जमीन के प्रति लगाव को सहज ही महसूस किया जा सकता है :

"राजू - मगर दूसरों के आसरे रोटी खाने के लिए घर-जमीन छोड़कर कब तक पड़े रहेंगे ? एक फसल बरबाद हो गई तो क्या ? अपनी ज़मीन में नयी फसल तो बोनी होगी। लाली को पाकर अब मैं सोच रही हूँ, पाशी कि कितनी और चीजें हैं जिन्हें हम छोड़ आये हैं। घर, गाय, खेत और जमीन वोह सब बोल नहीं सकते और रोकर हमारे पास भी नहीं आ सकते। मगर वोह सब हमारे हैं, हम उन्हें छोड़कर कैसे रह सकेंगे ? "[18]

इस नाटक की एक अन्य विशेषता यह है कि इसमें मनुष्य और उसके परिवेश के संबंधों को उभारा गया है। घर, खेत और जमीन चाहे निर्जीव वस्तुएँ हों लेकिन यह हमारे अस्तित्व को आकार देते हैं, अतः इनके प्रति एक ग्रामीण व्यक्ति का लगाव स्वाभाविक ही है। वास्तव में घर, गाय, खेत और जमीन वे महत्वपूर्ण आधार हैं जिनसे ग्रामीण व्यक्ति का जीवन संचालित होता है।

यह यथार्थवादी शिल्प में रचित एक यथार्थवादी नाटक है। नाटक वृत्ताकार रूपविन्यास को अपनाता है। नाटक का अंत वहीं होता है जहाँ से उसका प्रारंभ हुआ था। प्राकृतिक विपत्ति के कारण राजकरनी अपना घर छोड़ने के लिए विवश होती है लेकिन वह अपने परिवार के अन्य सदस्यों के साथ पुनः लौटती है। इसके साथ ही इस नाटक में अपने घर और परिवेश को छोड़ते हुए मनुष्य के अन्तर्द्वन्द्व को पूरी निष्ठा के साथ उभारा गया है। नाटक में मनुष्य का अपनी जड़ों से गहन रिश्ता दर्शाया गया है। जहाँ राकेश के अधिकांश नाटकों में घर से मुक्ति की चाह और प्रत्यावर्तन के लिए विवशता नज़र आती है वहीं यह नाटक मनुष्य के अपने घर से लगाव और घर एवं जड़ों की ओर प्रसन्नतापूर्वक लौटना दिखाता है। इस मायने में यह नाटक अधिक घनात्मक एवं आशावादी है। पंजाबी लोकगीतों और लोकभाषा के शब्दों के माध्यम से ग्रामीण पृष्ठभूमि को विश्वसनीय रूप दिया गया है चूँकि इस नाटक के अधिकांश पात्र ग्रामीण परिवेश के हैं अतः उनकी भाषा में तत्भव शब्दों की प्रधानता है, परलय, कोठरी, मेंह, छप्पर, भाजल जैसे शब्द पात्रों की व्यक्तिगत और सामाजिक स्थिति का तो उद्‌घाटन करते ही हैं, नाटक की ग्रामीण पृष्ठभूमि को भी प्रामाणिकता प्रदान करते हैं। अन्य ध्वनि-नाटकों की तरह विभिन्न प्रकार की ध्वनियों का नाटककार ने कुशलतापूर्वक नियोजन किया है। रहट के चलने, बैलों की घंटियाँ, बादलों का गर्जन, वर्षा का शब्द, गाय के रंभाने का शब्द, ढोलक की थाप, भाग-दौड़ का शब्द इत्यादि ध्वनियों के माध्यम से नाटककार ने प्राकृतिक विपदा के समय मनुष्य की अस्त-व्यस्त स्थिति को दर्शाया है।

समग्रतः प्रासंगिक अन्तर्वस्तु पर आधारित होने के कारण 'दूध और दांत' निश्चय ही राकेश का एक महत्वपूर्ण नाटक है। यद्यपि इसके शिल्प में कोई चौंकानेवाली नवीनता नहीं है और न ही भाषा की बहुस्तरीयता और नई नाटकीय युक्यिों का प्रयोग। फिर भी नाटक की प्रत्यक्ष और पैनी भाषा, नाटकीय अन्तर्वस्तु को पूरी सफलता के साथ उद्‌घाटित करती है।

'आखिरी चट्टान तक' राकेश द्वारा इसी नाम से लिखे गए यात्रा-वृत्तांत का रेडियो रूपांतर है। इसमें यायावर अपनी यात्रा के दौरान अलग-अलग मानसिकताओं और विचारधाराओं वाले लोगों से मिलता है, कुछ से प्रभावित होता है, कुछ पर हँसता है और कुछ से चिढ़ता है। यात्रा की समाप्ति पर उसके मानस पटल पर जहाँ एक ओर विविध प्राकृतिक दृश्यों के चित्र अंकित हो जाते हैं, वहीं दूसरी ओर उसके मन का भटकाव एक नई बेचेनी को जन्म देता है। सबसे पहले सफेद हैटवाले एक गोआनी से मिलता है, जो हर चुनाव खुद अपने लिए करता है और कभी मन में अफसोस नहीं लाता। वह जिंदगी को खुली आँखों से देखने का हिमायती है। उसके अनुसारः

"गोआनी : तुम जानते हो कि जिन्दगी के साथ सबसे बड़ी दिक्कत क्या है ? यह कि आदमी दिन-ब-दिन पहले से अक्लमन्द होता जा रहा है। जो बच्चा आज पैदा होता है, वह कल पैदा हुए बच्चे से ज्यादा अक्लमन्द होता है। एंड आई से——

---(थोड़ा धीमे स्वर में) तुम जानते हो इसका असर क्या हो रहा है ? यह रोज़ रोज बढ़ती अक्लमन्दी हम मर्दो को तो फिलासफर बनाए दे रही है और औरतों को - हरतरह से बेलगाम।"[19]

मिस्टर फर्नान्डिस से अलग हो जाने पर यायावर पूना से लोन्डा, लोन्डा से वास्को, चला जाता है। नए-नए चेहरे, नए-नए रीति-रिवाजों से उसका परिचय होता है। फिर वह एक किसान से मिलता है, जो गिरिजाघर के पादरी का खिद्मतगार है और इसे अपना सौभाग्य मानता है। उसके उपरांत यायावर का पाला एक फेरीवाले से पड़ता है, जो उससे मूर्ति खरीदने का अनुरोध करता है। फेरीवाले से पिंड छुड़ाकर यायावर एक मराठी युवक कारवाडकर के साथ वास्को की मुख्य सड़क पर घूमने निकल पड़ता है। अगले दिन यायावर कारवाडकर से विदा लेकर मंगलौर के लिए निकल पड़ता है। अचानक उसकी मुलाकात हुसैनी से होती है, जिसके लिए सारी दुनिया ताश का खेल है :

"ट्रेल और सीक्वेंस वाले लोग तो अपनी फर्स्ट-क्लास की केबिनों में सोए हैं। मगर ये टूरिस्ट-क्लास के लोग जिन्हें जिन्दगी का खेल खेलने के लिए सिर्फ इक्का-बादशाह-गुलाम की बाज़ी मिली है, हम इक्के-चौके-पंजे वालों पर कैमरों का रोब झाड़ रहे हैं। आखिर हालत इनकी भी वही होती है जो दुक्के-चौके-पंजे वालों की। मगर ये लोग थोड़ा पिटकर अपनी असली जगह पर आते हैं।"[20]

हुसैनी अंदर से नितांत अकेला व्यक्ति है जो साल में बीस-पचीस दिन से ज्यादा अपने धर नहीं रह पाता। उसे अपने हाल पर छोड़ यायावर ने कण्णूर की गाड़ी पकड़ी। यहाँ के बैक वाटर्स काफी प्रसिद्ध है। यहाँ उसकी मुलाकात हुई नंदलाल कपूर से। जो मौकापरस्त बेतकल्लुफ व्यक्ति है। यायावर को इस व्यक्ति से बड़ी मुश्किल से छुटकारा मिला। फिर वह पहुँचा मालाबार प्रदेश में जहाँ की सांस्कृतिक समृद्धि, लोक-जीवन और नृत्य देश की कलात्मक उपलब्धियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। कण्णूर से तेल्लीचेरी और तेल्लीचेरी से कोज़ीकोड और उसके बाद मिला यायावर को एक मजदूर-गोविन्दन, जिसने उसे कॉफी के बगीचे दिखाये और वहाँ की पैदावार और मजदूरों की ज़िन्दगी के बारे में बताया। यायावर कोज़ीकोड से त्रिचूर गया। वडक्कुनाथन का मंदिर देखने के लिए, जिसमें धोती-अंगोछे का होना जरूरी था। यहाँ श्रीधरन उसका गाइड बना, जो एक धार्मिक संस्था में कार्य करता था और अपनी माँ के साथ अकेला रहता था। इन दोनों के जीवन का कार्यक्रम निश्चित था और अपने घर की परिधि के आसपास को छोड़कर इन्होंने कुछ और नहीं देखा था। अतः यायावर का उनके घर आना उनकी असुविधा का कारण बन गया। यहाँ से निकलकर यायावर अर्नाकुलम पहुँचा और शाम को कोचीन के मटनचेरी पेलेस। यहाँ वह भास्कर नामक एक व्यक्ति से मिला, जो एक चित्रकार था। इतने भिन्न-भिन्न लोगों से मिलने के बाद यायावर को लगा कि हर परिवार की निजी जिन्दगी एक छोटी सी संस्कृति का रूप ले लेती है और ये छोटी छोटी संस्कृतियाँ मिलकर एक क्षेत्रीय संस्कृति का रूप ले लेती हैं। क्षेत्रीय संस्कृतियाँ एक

राष्ट्रीय संस्कृति का और राष्ट्रीय संस्कृतियाँ एक मानवीय संस्कृति का। यहीं पर एक पढ़े-लिखे भिखारी से भी यायावर टकराता है। इस तरह आवली और आम्बलम होते हुए वह अलेप्पी जाने के लिए निकल पड़ता है। फिर कोयलून तथा बाद में त्रिवेन्द्रम से सात मील दूर कोवलम बीच। यहाँ वह एक बूढ़े से मिलता है, जिसका बेटा भूमिनाथन तंगहाली की वजह से दिल्ली भाग गया था। इसके उपरांत यायावर अपनी यात्रा के अंतिम पड़ाव कन्याकुमारी पहुँच जाता है जो सुनहले सूर्योदय और सूर्यास्त की भूमि है। यहाँ वह एक बेरोजगार ग्रेजुएट से मिलता है, जो नौकरी न मिलने के कारण दार्शनिक हो गया है। हिन्द महासागर, अरब सागर और बंगाल की खाड़ी - के संधिस्थल पर खड़े होकर शक्ति और विस्तार की गहरी अनुभूति को अपने भीतर महसूस करते हुए यायावर अपनी यात्रा का अर्थ खोजने की कोशिश करता है, पर जीवन के सभी प्रश्नों की तरह उसका यह प्रश्न भी अनुत्तरित रह जाता है।

इस रेडियो रूपांतर में राकेश ने एक ओर प्रकृति और दूसरी ओर मनुष्य दोनों के विविध रंगों को पूरी ईमानदारी से उपस्थित करने का प्रयास किया है। जहाँ प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन है, वहाँ भाषा अलंकारिक एवं काव्यमयी है और जहाँ अलग-अलग तरह के मनुष्यों का वर्णन है, वहाँ भाषा चरित्रों की मानसिकता, विचारधारा एवं सामाजिक स्थिति के अनुरूप ढलती हुई प्रतीत होती है। गोआ के रहनेवाले मिस्टर फर्नान्डिस की हिन्दी अंग्रेजी मिश्रित है, तो हुसैनी के पेशे से उसकी भाषा भी प्रभावित है, जो ताश के पत्तों के इर्द गिर्द ही धूमती है। नंदलाल कपूर की भाषा पंजाबी मिश्रित हिन्दी है तो गोविन्दन, श्रीधरन, भास्कर आदि की भाषा में दक्षिण भारतीय रंग नजर आता है। प्रकृति के विविध रंग और मनुष्यों के अलग-अलग रूप इस रेडियों रूपांतर को बहुरंगी बनाते हैं। और अपने इन्द्रधनुषी शेड्स की वजह से यह हमें ताजगी प्रदान करता है।

(iii) 'अण्डे के छिलके' तथा अन्य एकांकियों का कथ्य एवं रंगशिल्प :

पूर्णाकार नाटकों के अलावा मोहन राकेश ने अनेक एकांकियों, ध्वनि नाटको, बीज-नाटकों तथा एक पार्श्व-नाटक की भी रचना की है जिनपर विचार किये बिना उनके बहुआयामी रचनाकर्म का मूल्यांकन अधूरा ही रहेगा। अंडे के छिलके, अन्य एकांकी तथा बीज नाटक शीर्षक से प्रकाशित संग्रह में राकेश के चार एकांकियों, दो बीज नाटकों और एक पार्श्व नाटक को शामिल किया गया है - जो नाटककार के बहुस्तरीय प्रयोगधर्मी लेखन का समर्थ उदाहरण है। अण्डे के छिलके एक हास्य प्रधान एकांकी है। इसमें एक ऐसे परिवार को दर्शाया है जहाँ सभी एक-दूसरे की कमजोरियों और आदतों से परिचित हैं, लेकिन बड़ों का लिहाज और आँखों की शर्म

की वजह से ऐसी आदतों और कमजोरियों को अपने तक सीमित रखना चाहते हैं। परंपरा और संस्कारों के अवशेष अब तक इस घर की युवापीढ़ी में शेष हैं जो उन्हें स्वेच्छाचारी और उन्मुक्त रूप से जीवन-यापन की इज़ाजत नहीं देते। बरसात की एक शाम को खुलते हुए फंदों की तरह बीना, श्याम, राधा, गोपाल - सभी सदस्यों के आवरण एक एक करके हटते जाते हैं। माँ सब कुछ जानते हुए भी अनजान बनी रहती है और सब कुछ देखते हुए भी कुछ नहीं देखती। बच्चे उसका सम्मान करते हें, उसका लिहाज़ करते हैं, यही उसके लिए काफी है।

इस नाटक में सच को छिपाने का प्रयास करते हुए परिवार के विविध सदस्यों के विसंगत आचरण को अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त किया है। यह विसंगति परिवेश में भी है और पात्रों के आचरण में भी, जो सहज ही हास्य उत्पन्न करती है। यथा :

"जमुना : यह कौन-सी किताब है ?

श्याम : यह किताब ? .. .. यह अम्मा .. .. यह मेरे कोर्स की .. .. मतलब मेरे कोर्स की किताब नहीं है यह .. .. शायद यह भाभी की किताब है .. ..।

बीना : यह जीजी की गुटका रामायण है, माँजी ! जीजी पढ़ती-पढ़ती यहाँ ले आयी थीं।

श्याम : हाँ, हाँ, हाँ, भाभी की गुटका रामायण ही तो है। मैं कह रहा था कि लगती तो गुटका रामायण जैसी ही है।

जमुना : मगर गुटका रामायण तो बहुत छोटी होती है। यह तो इतनी बड़ी किताब है।

श्याम : हाँ अम्मा, पहले यह छोटी थी, अब यह - मेरा मतलब है अम्मा कि इसका पहला एडीशन छोटा था, मगर जो नया एडीशन आया है, वह पहले से बड़ा है। इनके साइज बदलते रहते हैं, यह कोई खास बात नहीं है।"[21]

इस एकांकी में रचनाकार ने मध्यवर्गीय जीवन में फैले पाखंडों को भी रेखांकित किया है। गोपाल और श्याम अंडा खाना तो चाहते हैं, लेकिन उसका नाम नहीं लेना चाहते। बीना और श्याम के संवाद में युवावर्ग का यह पाखंड स्पष्ट नज़र आता है :

"बीना : भई, तुम लोगों की यह बात मेरी समझ में बिल्कुल नहीं आती। अगर खाना ही है तो उसमें छिपाने की क्या बात है ? सबके सामने खाओ। माँ जी नहीं खातीं इसलिए रसोईघर की बजाय यहाँ कमरे में बना लेते हैं। और अण्डे में जीव कहाँ होता है ? जैसे दूध वैसे अण्डा।

श्याम : हरि, हरि, हरि ! फिर वही नाम ! भाभी आज इस बरसते पानी में तुम जान निकलवाओगी। तुमसे कोई कुछ नहीं कहेगा। अम्मा मेरे सिर हो जायेंगी कि सब तेरी ही करनी है। तुम खाओ, बनाओ, जो चाहे करो। मगर इस चीज का नाम मुँह पर मत लाओ। .. .. लाओ पैसे निकालो।"[22]

न सिर्फ श्याम और गोपाल के जीवन में पाखंड की प्रधानता है, बल्कि उनकी भाभी राधा की भी यही स्थिति है। उसे चन्द्रकान्ता पढ़ने में आनंद आता है, लेकिन वह किसी के सामने अपना यह रहस्य प्रकट करना नहीं चाहती।

इस एकांकी में संकलनत्रय अर्थात् समय, स्थान और कार्य् - की अन्विति का सम्यक् निर्वाह किया गया है। एकांकी की महत्वपूर्ण विशिष्टता यह है कि बिना किसी खास रंगमंचीय युक्ति और उपकरणों के बावजूद यह अपनी अन्तर्वस्तु को सफलतापूर्वक अभिव्यंजित करती है। केवल छह पात्रों के माध्यम से एकांकी को मूर्त रूप दिया गया है। बीना शिक्षित और समझदार युवती है, जिसके चरित्र में किसी प्रकार का द्वैत और पाखंड नहीं है। गोपाल, श्याम और राधा की कथनी और करनी में अंतर स्पष्ट नज़र आता है। माधव एक हँसमुख और सुलझा हुआ व्यक्ति है, जिसे ढोंग में विश्वास नहीं है। जमुना एक ऐसी माँ है जो सच्चाई से अवगत होते हुए भी न जानने का अभिनय करती है क्योंकि वह परिवार के वरिष्ठ सदस्यों का सम्मान और लिहाज बनाए रखना चाहती है। नाटक की भाषा सरल किन्तु प्रभावशाली है। असमंजस, अनिश्चितता एवं वस्तुओं को छिपाने के प्रसंग में अपूर्ण वाक्यों, अन्तरालों, प्रश्नवाचक चिन्हों एवं विराम चिन्हों का प्रयोग पात्रों की मनःस्थिति को सफलतापूर्वक उद्घाटित करता है। अंडे के छिलके और अंडे के हलवे को छिपाने के प्रसंग में भाषा हास्य से भरपूर है। एकांकी में अभिव्यक्त क्रिया-व्यापार सार्थक एवं नाटक को गति प्रदान करते हैं। चम्मच भर भरकर हलुआ मुँह में डालना, माँ के बाहर निकलते ही श्याम का फ्राइंग पैन पर झपट पड़ना, गोपाल का हाथों में छिलका लिए असमंजस में इधर-उधर देखना ऐसी क्रियाएँ हैं जो अपने आप में पूर्ण संदर्भ हैं और एकांकी को तीव्रता एवं गति प्रदान करते हैं। इसमें नाटककार ने क्रिया व्यापार से संबंधित रंग-संकेत अधिक दिए हैं। उसके बाद ध्वनि संबंधी रंग संकेत हैं। प्रकाश संबंधी, मंच संबंधी एवं वस्त्र विन्यास संबंधी रंग संकेत लगभग नगण्य हैं।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि यह एकांकी एक ओर स्वेच्छाचारी जीवन-दृष्टि को नकारता है तो दूसरी ओर मध्यवर्गीय जीवन में फैले ढोंग और पाखंड की मनःस्थिति को भी अनावृत्त करता है। न तो इसके शिल्प में कोई नवीनता है और न किसी विशिष्ट तरह की नाटकीय युक्तियों का प्रयोग। फिर भी एक प्रासंगिक विषय वस्तु को सफलतापूर्वक उद्घाटित करने के कारण यह अवश्य ही एक महत्वपूर्ण एकांकी है।

'अंडे के छिलके' संग्रह में संकलित एक अन्य एकांकी है -'सिपाही की माँ'। शीर्षक के अनुरूप ही यह एकांकी फौज में शामिल व्यक्ति के परिवार जनों खासकर माँ की मानसिक स्थिति का उद्घाटन करता है। चिट्ठी आने में विलम्ब हो जाने के कारण मानक नामक सिपाही की माँ अत्यंत परेशान हो उठती है। हर रोज वह डाकवाली गाडी का इन्तज़ार करती है, इस आशा में कि आज शायद उसके बेटे का पत्र अवश्य आयेगा। बिशनी और मुन्नी के संवाद के माध्यम से रचनाकार ने एक

सिपाही की माँ की दुनिया एवं अंतहीन इंतजार की पीड़ा का मर्मस्पर्शी उद्घाटन किया है :

"बिशनी : ये मुए जाने चिट्ठी रास्ते में रख लेते हैं कि क्या करते हैं। मेरा मानक तो ऐसा नहीं कि दो-दो महीने चिट्ठी ही न लिखे। पहले हर पंद्रहवें रोज चिट्ठी आ जाती थी। अबकी न जाने कौन पहाड़ रास्ते में खड़ा हो गया है ? कम से कम अपनी राजी-खुशी तो लिख देता।

मुन्नी : माँ, मेरा दिल कहता है कि अगले मंगल को भैया की चिट्ठी जरूर आएगी।

बिशनी : तेरा दिल तो हर मंगल को कहता है, पर चिट्ठी आने का नाम नहीं लेती। जाने भाग में क्या खोट है जो चिट्ठी के लिए इतना तरसना पड़ता है। इस बार यह घर आ ले, फिर मैं इससे पूछूँगी।

मुन्नी : पिछली चिट्ठी में भैया ने लिखा था कि वे ब्रम्मा की लड़ाई पर जा रहे हैं। माँ, शायद उन्हें लड़ाई में चिट्ठी लिखने की फुरसत ही न मिलती हो।

बिशनी : इतनी फुरसत भी नहीं मिलती कि माँ को चार हरफ लिखकर डाल दें ? उसे यह नहीं पता कि मेरी चिट्ठी आती है तो माँ के कलेजे में जान पड़ती है। माँ, के कौन दो-चार हैं जिनके सहारे वह परान लेकर बैठी रहेगी ? नदीदे को यह बात तो सोचनी चाहिए।"[23]

एक अन्य स्तर पर यह एकांकी युद्ध की विभीषिका और उसके मनुष्य के ऊपर पड़ने वाले प्रभाव को रेखांकित करता है। द्वितीय विश्वयुद्ध की पृष्ठभूमि पर आधारित इस एकांकी में ब्रिटिश और जापानी फौजों के बीच बर्मा में होने वाली घमासान लड़ाई का चित्रण किया गया है। इस युद्ध के कारण हज़ारों घर उजड़ गए और वहाँ रहने वाले लोग घर-बार छोड़कर शरणार्थी का जीवन जीने के लिए विवश हो गए हैं। रोज़ गोलाबारी के कारण पूरा देश तबाह हो गया है और फौज के सिपाहियों को छोड़कर वहाँ और कोई नहीं बचा है, यहाँ तक कि अपनी ज़मीन और अपने देश से विस्थापित ये शरणार्थी लोग भीख माँगकर जीवन-यापन करने के लिए विवश हैं । इस प्रकार प्रकारांतर से इस एकांकी में शरणार्थियों की जीवन-स्थिति को भी रेखांकित किया गया है। युद्ध क्षेत्र इतना व्यापक है कि इसका विस्तार शहरों तक सीमित न होकर समुद्र और जंगलों तक व्याप्त है। इस एकांकी में रचनाकार ने युद्ध की विभीषिका का मनुष्य की मानसिकता पर पड़नेवाले प्रभाव को भी चित्रित किया है :

"सिपाही : मेरी माँ .. .. ? (ज़रा सा हँसकर) मेरी माँ अब पागल हो गयी है। वह रोज़ मेरी मौत का इन्तज़ार करती है। वह हँसकर कहती है कि थोड़े दिनों में मेरे बेटे की लाश घर आयेगी। मेरी बीबी ने अभी से बेवा का स्वाँग बना लिया है। उसने मुझे लिखा है कि जिस दिन वह मेरे मरने की खबर सुनेगी उस दिन गले में फाँसी लगाकर मर जायेगी। उसके पेट में छह महीने का बच्चा है। उसके साथ ही वह भी मर जायेगा।"[24]

युद्ध मनुष्य को किस तरह संवेदनहीन और बर्बर बना देता है इसका प्रत्यक्ष प्रमाण मानक के स्वभाव में होनेवाला परिवर्तन है। जो मानक मरते हुए कबूतर को भी आँखों से नहीं देख सकता था वह युद्ध में शामिल होने के बाद हज़ारों लोगों की जान ले लेता है, उसके चरित्र में एक अजीब-सा वहशीपन शामिल हो गया है, जिसका एक ही सिद्धांत है - लोगों को मारना।

इस एकांकी में आर्थिक बदहाली के शिकंजे में जीवन-यापन करते हुए मनुष्य की मजबूरियों का प्रामाणिक अंकन मिलता है। मानक की माँ अपने बेटे को लड़ाई में कदापि नहीं भेजना चाहती है लेकिन उसकी आर्थिक बदहाली एवं लड़की के ब्याह की चिन्ता उसे मजबूर करती है कि वह मानक को युद्ध में भेजे।

इस एकांकी का रूप-विन्यास सुगठित है। यद्यपि इसका अंत स्पष्ट नहीं है और राकेश ने इसका सांकेतिक अंत कर दिया है तथापि एकांकी की संपूर्ण संरचना में किसी प्रकार की अस्पष्टता या अनिश्चितता नहीं है। एकांकी में रचनाकार ने स्वप्न शैली का भी प्रयोग किया है जो युद्ध की विभीषिका और यंत्रणा को गहराता है। एकांकी की भाषा यथार्थपरक और प्रत्यक्ष है। लेकिन दोनों सिपाहियों के बीच लड़ाई के प्रसंग में भाषा ऊबड़-खाबड़ और अपूर्ण वाक्यों से युक्त है। अधूरे वाक्यों, अन्तरालों, प्रश्नवाचक-चिन्हों एवं विराम चिन्हों के माध्यम से राकेश ने घायल सिपाही की मानसिकता को सफलतापूर्वक उजागर किया है। ये ऐसी नाटकीय युक्तियाँ हैं जिनका प्रयोग राकेश के अधिकांश नाटकों में देखने को मिलता है।

इस एकांकी के रंगशिल्प की एक अन्य विशेषता है - रंग संकेतों की विविधता एवं परिपूर्णता। अपनी अधिकांश एकांकियों और ध्वनि नाटकों में राकेश ने ध्वनि संबंधी संकेतों को ही मुख्य रूप से अंकित किया है, प्रकाश, रंगमंच तथा वस्त्र-विन्यास संबंधी संकेतों की भूमिका गौण है लेकिन इस एकांकी में रचनाकार ने इन सभी संकेतों का कुशलतापूर्वक उपयोग किया है। प्रकाश के विविध रंगों और अंधकार के माध्यम से रचनाकार ने परिवेश और पात्रों की मनःस्थिति को उजागर किया है। वस्त्र-विन्यास और मंचीय उपकरण संबंधी संकेत, पात्रों की आर्थिक परिस्थिति का संकेत करते हैं :

"देहात के घर का आँगन, अँधेरा और सीलदार। आँगन के बीचोंबीच एक खस्ताहाल चारपाई पड़ी है। एक ओर वैसी ही चारपाई दीवार के साथ रखी है। दायें कोने में दो-तीन मिट्टी की हँडियाँ पड़ी हैं। सामने एक लकड़ी का टूटा हुआ दरवाजा है, जो घर के अन्दर खुलता है। दरवाजे पर एक अँगोछा और चारपाई पर एक फटी हुई धोती सूख रही है। बायीं ओर बाहर जाने का रास्ता है, जिसमें किबाड़ नहीं है।"[25]

समग्रतः यह एकांकी समकालीन जीवन की कुछ ज्वलंत समस्याओं को सुगठित रूपबंध में दर्शाता है। एक सिपाही की अनिवार्य नियति मरना या मारना है और उसके घरवालों की नियति सिपाही की कुशलता हेतु प्रार्थना और अंतहीन

इंतज़ार करना है। इन दोनों विरोधी आकांक्षाओं को इस एकांकी में विकसित किया गया है। युद्ध की विभीषिका और उसका मानव जीवन पर पड़ने वाला प्रभाव आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना प्राचीन काल में या राकेश के युग में था। इसके साथ ही इस एकांकी में स्वप्न शैली का रचनात्मक इस्तेमाल किया गया है जो युद्ध की यंत्रणा को सघन बनाने का काम करता है।

'प्यालियाँ टूटती हैं' इस संग्रह की एक और एकांकी है, जो नव धनाढ्य वर्ग की झूठी शानो-शैकत और दिखावटी मानसिकता को अनावृत्त करता है। इस नव धनाढ्य वर्ग की मूल प्रवृत्ति मध्यवर्गीय है, जो हर समय स्वयं को ऊँचा दिखाने, दिखावटी प्रतिष्ठा के पीछे दौड़ने तथा सभी प्रकार की भौतिक सुख-सुविधाओं को जुटाने के संघर्ष में लगा रहता है। इस वर्ग की मानसिकता को रेखांकित करते हुए मोहन राकेश ने लिखा है :

"एक बात और जो मैं यहाँ कहना चाहूँगा और वह यह कि आज के भारत के बहुत-से व्यक्ति विभाजन के बाद केवल उसी मध्यवर्गीय तरीके से धनी हुए हैं। इसलिए आज उनके धनी हो जाने के बावजूद भी उनकी मानसिक प्रवृत्ति उसी प्रकार की वही मध्यवर्ग की है। .. .. विभाजन से पहले हमारे यहाँ उच्च वर्ग जरूर था जो भले ही तब खस्ताहाल हो चुका था, लेकिन फिर भी वह अपना आभिजात्य लिए हुए था, जो आजकल ढूँढ़ने पर भी नहीं मिल सकता।"[26]

इस एकांकी में विभाजन के बाद पाकिस्तान से विस्थापित एक ऐसे नव धनाढ्य परिवार को दिखाया गया है जो अचानक अमीर हो गया है। एकांकी अमीर घरानों में प्रचलित शाम की चाय (high tea) पर आधारित है। भोलानाथ और माधुरी ने मेहता दंपति को शाम की चाय पर घर बुलाया है पर ऐसे में उनके आने से पहले भोलानाथ के एक रिश्तेदार (सियालकोट वाले मौसाजी) टपक पड़ते हैं। इन्हीं जीजा दीवानचन्द के आने को माधुरी अपने हाथ से टूटती प्यालियों से जोड़ती है। टूटती प्यालियाँ उसके लिए एक अपशकुन हैं और जीजा दीवानचन्द का आना उसकी परिणति। दीवानचन्द को देखकर माधुरी में एक घिनौनी सी सिहरन होती है जिसकी वजह है उनका पहनावा, बैठने-उठने एवं बोलने का तरीका एवं आर्थिक बदहाली। किसी जमाने में यही दीवानचन्द शाह दीवानचन्द के नाम से जाने जाते थे और उनकी स्वयं की हवेली थी। पर पैसा क्या गया रिश्तेदारों ने उनसे किनारा कर लिया। अब तो उन्हें मखमल में लगे पैबंद की तरह छिपाया जाता है। माधुरी और उसकी बेटी पम्मी का निम्नलिखित संवाद मानवीय संबंधों पर आर्थिक बदहाली के प्रभाव को रेखांकित करता है :

"माधुरी : बताओ, मैं क्या करूँ ? राधा दीदी के नाते इन्हें बरदाश्त करना पड़ता है, लेकिन ये हैं कि बस .. ।

पम्मी : आज माथे पर गेरु का तिलक भी लगाये हैं। कहते हैं, चिंतपुरनी होकर आ रहे हैं।

माधुरी : ड्राइंग रूम में बैठे हैं ?

पम्मी : नये सोफे पर पालथी मारकर बैठे हैं।

माधुरी : तुझे कुछ दिया-विया तो नहीं ?

पम्मी : मुझे पास बुला रहे थे, लेकिन मैं गयी नहीं। मुझे उनके कपड़ों से बदबू आती है।

माधुरी : बड़ो मुसीबत है। एक बार उनकी बातों का सिलसिला आरंभ हो जाए तो फिर समाप्त ही नहीं होता। हमेशा वही बातें बीबी स्यालकोट के दिन होते तो यह होता, वह होता। दीवानचंद आज भी शाह दीवानचन्द होता। दीवानचन्द की हवेली खड़ी होती। .. .. दीदी चली गयी, लड़की पाकिस्तान में रह गयी मगर ये मैले-चीकट शाह यहाँ पहुँच गये।

पम्मी : ममी, ऐसे आदमी को घर में नहीं आने देना चाहिए। देखो कितना बुरा लगता है ?

माधुरी : अब यह जबरदस्ती का रिश्ता है। किसी दिन दो-चार गुलाब-जामुन ले आयेंगे। किसी दिन खट्टे चनों का कुल्लढ़ भर लायेंगे और जाते हुए एक मैला पुराना रूपये का नोट पम्मी के हाथ में दे जायेंगे। चार पैसे की चीज़ लायेंगे और मेरे कारपेट अपने जूते से खराब कर जायेंगे। पम्मी, आज फिर कोई स्यालकोट का किस्सा सुना रहे हैं ? "[27]

पैसे के जादू को स्पष्ट करता उपरोक्त संवाद दीवानचन्द के प्रति माधुरी एवं उसके परिवारवालों की उपेक्षा को रेखांकित करता है। घर के सभी सदस्य येन केन प्रकारेन दीवानचंद को जल्द से जल्द यहाँ से भगा देना चाहते हैं। इसलिए उन्हें मीठी चाय की प्याली पेश की जाती है और उनके आने का प्रयोजन जानने की चेष्टा की जाती है। दीवानचंद से पता चलता है कि वह एक भिखारिन लड़की को अपनी बेटी 'शुक्ला' बनाकर घर ले आए हैं और उसके पालन-पोषण तथा विवाह करने की इच्छा रखते हैं। उसी बच्ची की देखभाल करने के लिए कोई छोटी-मोटी दुकान खोलना चाहते हैं और उसके लिए माधुरी एवं भोलानाथ से कर्ज के रूप में कुछ रूपया चाहते हैं। चार-पाँच सौ की मामूली रकम भी भोलानाथ और माधुरी के लिए भारी प्रतीत होती है और दीवानचंद ठुकराये हुए से दयनीय स्थिति में पम्मी के लिए एक रूपया और चिंतपुरनी का प्रसाद देकर पीछे के दरवाजे से चले जाते हैं। यह विडम्बना ही है कि अपने को अमीर समझनेवाले भोलानाथ दंपति, जिनके घर प्यालियाँ आए दिन टूटती रहती है, टी-सेट बदलते रहते हैं, वे दीवानचन्द को चार-पाँच सौ रूपये की मामूली राशि भी कर्ज़ के रूप में नहीं दे पाते। दूसरी ओर खस्ताहाल फटेहाल दीवानचन्द हैं जो याचक बनकर आते हैं और अंततः पम्मी को एक रूपया और प्रसाद देकर ही जाते हैं। गौरतलब है कि भोलानाथ दंपत्ति के घर उस शाम दो अतिथि आते हैं - पहला अयाचित अतिथि भोलानाथ, जिसे संक्रामक रोग की तरह शीघ्रातिशीघ्र निपटाकर पीछे के दरवाजे से भेज दिया जाता है ताकि

कोई उसे देख न ले। दूसरे हैं आमंत्रित अतिथि मेहता दंपत्ति जिनके साथ भोलानाथ और माधुरी का रिश्ता उतना ही झूठा और बनावटी है, जितना उनके मुँह चिपकी रहनेवाली नपी तुली मुस्कुराहट। अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा के प्रदर्शन के लिए माधुरी मेहता दंपत्ति को चाय पर बुलाती है, पर श्रीमती मेहता के प्रति उसकी कटुता यह साबित करती है कि इन दोनों परिवारों में सहज और स्वस्थ संबंधों की कोई गुंजाइश नहीं है। यह निहायत अटपटा और असंगत लगता है कि दो स्त्रियाँ जो एक-दूसरे की खामियाँ ही ढूँढ़ती रहती है, शाम की चाय साथ बैठकर पियें। माधुरी का श्रीमती मेहता के प्रति रूख इन पंक्तियों में स्पष्ट झलकता है :

"माधुरी : मिसेज मेहता को चाय के लिए कहकर मैंने तो मुसीबत मोल ले ली है। (मीरा पत्रिका पर झुककर फिर पन्ने पलटने लगती है।)

मीरा : क्यों ? इसमें घबराने की ऐसी क्या बात है ? तुम्हारे यहाँ तो रोज़ किसी न किसी की चाय रहती है।

माधुरी : पर तुम मिसेज मेहता को जानती नहीं हो। बहुत नखरेवाली औरत है।

मीरा : नखरेवाली है तो क्या हुआ ? तुम्हारी चाय भी तो कम नखरे की नहीं होती .. ..।

माधुरी : फिर भी उस औरत का कुछ नहीं कहा जा सकता। तुम्हारे सामने मुसकराती रहेगी और हर चीज़ देखकर 'हाऊ नाइस', 'हाऊ ब्यूटीफुल', कहती रहेगी। बाद में दूसरे लोगों के सामने तरह-तरह के मज़ाक उडायेगी।

मीरा : तुम्हें तो ख़ामख्वाह का कॉम्प्लेक्स है, दीदी ! अपनी अच्छी से अच्छी चीज़ पर भी तुम्हें भरोसा नहीं होता। तुम्हारी वह किस चीज़ का मज़ाक उडायेगी ?

माधुरी : यह मैं नहीं जानती। मैंने दोनों सेट महिपत से अच्छी तरह स्टीम कराये हैं । सवेरे लॉन की घास भी कटवायी थी। टूटे हुए गमले उठवा दिए हैं। फिर भी उसकी नज़र कुछ-न-कुछ ढूँढ़ ही निकालती है। अपने रहन-सहन का उसे बहुत गुमान है।"[28]

कितना अजीबोगरीब है अमीरों का यह स्वांग, जो उन्हें दीवानचन्द से रिश्ता बनाने नहीं देता, जबकि दीवानचंद उन्हें सच्चे दिल से प्यार करता है। दूसरी ओर जिस मेहता दंपत्ति से वह अपना संबंध जोड़ना चाहते हैं, वहाँ संबंध बनने की कोई गुंजाइश ही नहीं है।

एक अन्य स्तर पर राकेश इस नाटक में अमीर स्त्रियों के जीवन में फैले खालीपन और ऊब को दर्शाते हैं, जिनके पास फूल लगाने और दान देने के अलावा अन्य कोई काम ही नहीं है। इसीलिए ये स्वयं को सजाने और दूसरों की खामियाँ निकालने में ही समय व्यतीत करती हैं। नव धनाढ्य वर्ग के खोखलेपन को बेनकाब करता हुआ यह एकांकी राकेश की एक महत्वपूर्ण रचना है।

इसका शिल्प भली-भाँति नियोजित है। पात्र-योजना में दो प्रकार की मानसिकताओं को उभारा गया है। एक ओर दीवानचंद जैसा सीधा और सरल आदमी है, जो भोलानाथ एवं उसके परिवार के सदस्यों को सच्चे दिल से प्यार करता है। दूसरी ओर भोलानाथ उसकी पत्नी माधुरी एवं बेटी पम्मी हैं, जिनमें नव घनाढ्य वर्ग की झूठी-शानो-शौकत एवं प्रदर्शन की प्रवृति मुख्य है। मीरा माधुरी की छोटी बहन है, लेकिन उसमें माधुरी की अपेक्षा आत्मविश्वास अधिक है। महिपत में वे सब विशेषताएँ मौजूद हैं, जो एक अमीर घर के नौकर में सामान्यतः पायी जाती है। इस एकांकी में मंच-योजना और उससे संबंधित उपकरणों का वर्णन लेखक ने विस्तार से किया है। फिर भी कुछ संकेत ऐसे हैं जहाँ निर्देशक की कल्पना के लिए पूरा अवकाश दिया गया है। जैसे-दरवाजों और ऊपर के रोशनदानों की बनावट बिलकुल आधुनिक किस्म की है। इसमें समय, स्थान और कार्य की अन्विति का पूरी तरह पालन किया गयाहै। एकांकी में वर्णित कालखंड काफी संक्षिप्त है: दोपहर से शाम के ढलने तक का समय। इसकी भाषा पात्रानुकूल, धारदार और चुस्त है। उच्चवर्ग की मानसिकता को अभिव्यक्त करने के लिए संवादों के बीच में कहीं-कहीं अंग्रेजी वाक्यों का भी प्रयोग किया गया है। जैसे 'आइ एम फिलिंग अपसेट', 'डॉन्ट बी नर्वस', 'इट्स गेटिंग लेट' 'व्हाट केन आइ डू एबाउट इट' आदि। यही नहीं अंग्रेजी शब्दों जैसे मिशन, नर्सरी टेस्ट, परफैक्शन, काम्प्लेक्स, पॉपी, नर्वस इत्यादी के माध्यम से परिवेश एवं पात्रों को विश्वसनीय रूप दिया गया है। दीवानचंद की भाषा में पंजाबी लहजा झलकता है, तो शेष पात्रों की भाषा अंग्रेजी मिश्रित हिन्दी है। भाषा के विविध रूप पात्रों के वर्गीय चरित्र को स्पष्ट करते हैं।

इस एकांकी में राकेश ने शिल्प के धरातल पर कोई नया प्रयोग नहीं किया है, फिर भी विषय की प्रासंगिकता और जीने की भाषा का प्रयोग इसे एक विशिष्ट एकांकी बनाता है।

इस संग्रह में संकलित अंतिम एकांकी है - 'बहुत बड़ा सवाल'। यह समकालीन जीवन में 'मीटिंग कल्चर' के बढ़ते प्रभाव और उसकी निरर्थकता को रेखांकित करता है। विभिन्न सरकारी एवं गैर-सरकारी संस्थाओं के संचालन में 'मीटिंग' की भूमिका महत्वपूर्ण होती है लेकिन इन बैठकों में विचार का मुख्य मुद्दा तो हाशिए पर रह जाता है शेष चर्चाएँ अधिक होती हैं। इन बैठकों के बहाने लोग एक तरफ तो खान-पान का लुत्फ़ उठाते हैं तो दूसरी तरफ एक दूसरे पर छींटाकशी भी करते रहते हैं। दरअसल ये बैठकें किसी महत्वपूर्ण समस्या पर विचार करने का माध्यम कम लोगों के मन बहलाने का साधन अधिक हैं। इनमें न तो किसी समस्या का निदान होता है और न ही मुद्दों पर सार्थक बहस, इसी वजह से यह अक्सर किसी निश्चित नतीजे तक नहीं पहुँच पाती और उसी बिन्दु पर खत्म हो जाती हैं जहाँ से शुरूआत हुई थी। कारण अनेक है - कभी कोरम पूरा नहीं होता, कभी प्रस्ताव पारित नहीं होता तो कभी बहस के लिए समय नहीं बचता, कई बार तो आपस का मनमुटाव और व्यक्तिगत बैर इन बैठकों में सार्वजनिक रूप ले लेता है

और यह सार्थक बहस का मंच कम अखाड़ा अधिक प्रतीत होती है। इसीलिए राम-भरोसे इन बैठकों को 'तमाशा' कहता है जो कूड़ा-संग्रह करने का माध्यम हैं :

"राम - भरोसे : उठ मइया, श्याम भरोसे ! तमाशा खतम हुआ।

श्याम - भरोसे : (जाग कर) बाबू लोग चले गए ?

राम - भरोसे : चले गये।

श्याम - भरोसे : क्या-क्या पास कर गये ?

राम - भरोसे : पास कर गये कि राम भरोसे, राम भरोसे के घर में रहेगा, श्याम भरोसे, श्याम भरोसे के घर में। और बाबू लोग अपने-अपने घर में रहेंगे।

श्याम - भरोसे : और ?

राम - भरोसे : और कि मूँगफली के आधे-छिलके राम-भरोसे साफ करेगा, आधे श्याम-भरोसे।

श्याम - भरोसे : और कुछ नहीं ?

राम - भरोसे : कुछ नहीं। (उसे बगल से पकड़कर सीधा खड़ा करता हुआ) अब सीधा हो जा। बहुत कूड़ा कर गये हैं। साफ करना है।"[29]

राम-भरोसे और श्याम-भरोसे का उपर्युक्त संवाद नित्य आयोजित होने वाली असंख्य बैठकों पर एक बेबाक लेकिन सटीक टिप्पणी है। वस्तुतः अधिकांश बैठकों का घोषित मुद्दा जनकल्याण से संबंधित होता है लेकिन इसके अलावा और हर तरह की चर्चाएँ इनमें होती है। इन बैठकों में भाँति-भाँति के लोगों की मानसिकता, रुचि, पूर्वग्रह एवं वैचारिक विविधता देखने को मिलती है।

इस एकांकी के माध्यम से रचनाकार ने निम्न मध्यवर्गीय कामगार वर्ग की निरंतर बदतर होती हुई जिन्दगी को भी उभारने की कोशिश की है। स्वाधीनता के बाद विविध शहरों और नगरों का तो तेजी से विकास हुआ है लेकिन एक आम मनुष्य की जिंदगी बद से बदतर ही हुई है। जीवन-यापन के निरंतर संकुचित हो रहे साधनों के साथ एक निम्नवर्गीय व्यक्ति का जीवन निरंतर संघर्ष है। शर्मा के निम्नलिखित संवाद द्वारा निम्नवर्गीय व्यक्ति के इस जीवन संघर्ष को अभिव्यक्त किया गया है :

"आज हम सरकार के सामने यह ठोस सुझाव रखना चाहते हैं कि .. .. मेरा मतलब है कि आबादी बढ़ जाने से शहर बी ग्रेड से ए ग्रेड हो जाते हैं, लेकिन जहाँ तक लोगों का ताल्लुक है .. .. कहना चाहिए कि लो ग्रेड वर्कर्ज की जिन्दगी लो ग्रेड से लोअर ग्रेड होती जाती है, इसलिए हमारे लिए जरूरी है कि .. .. और हमें सिर्फ प्रस्ताव ही पास नहीं करना उसके लिए उसे मनवाने के लिए पूरी कोशिश भी करनी है।"[30]

एक और महत्वपूर्ण समस्या राकेश ने इस एकांकी के माध्यम से उठायी है और वह है - आवास की समस्या। 'घर' मनुष्य की एक बुनियादी आवश्यकता है, जो

न केवल उसे आश्रय देता है, बल्कि पारिवारिक संबंधों को भी मजबूत बनाता है। स्वयं राकेश के मन में घर बसाने की इच्छा बहुत तीव्र थी और ऐसा प्रतीत होता है कि नाटककार की यह आकांक्षा ही शर्मा के इस वक्तव्य में अभिव्यक्त हुई है :

"क्योंकि घर एक ऐसी चीज़ है, जो हर आदमी की बुनियादी जरूरत है, उसकी सुख-शान्ति का आधार है। आदमी काम करता है कमाने के लिए। कमाता है आराम पाने के लिए। और सही मायने में आराम वह तभी पा सकता है जब उसके पास अपना एक ऐसा घर हो जिसमें .. .. सर्दी हो या गर्मी, दुख हो या सुख .. .. एक ऐसी जगह जहाँ .. .. जहाँ .. .. जहाँ पर वह .. .. उन लोगों के साथ .. .. उन लोगों के साथ जो कि उसका परिवार है .. .. हममें से हर एक का अपना परिवार है .. ... उस परिवार के साथ .. .. वह आदमी।"[31]

उपरोक्त पंक्तियों में रचनाकार ने मानव-मन की एक महत्वपूर्ण आकांक्षा को शब्दबद्ध किया है। 'घर' एक ऐसा केन्द्र बिन्दु है, जिससे अधिकांश भारतीय परिवारों का जीवन बँधा होता है। इस एकांकी में प्रच्छन्न रूप से यथास्थितिवाद की समस्या का भी उल्लेख किया गया है। निम्नस्तर की बात करते-करते व्यक्ति में निम्नस्तर की वृत्ति घर कर जाती है, जो आदमी की महत्वाकांक्षा और कार्यशक्ति को नष्ट कर देती है। ऐसी स्थिति में वह सिर्फ दूसरों का अनुकरण करनेवाली मशीन में परिवर्तित हो जाता है और उसमें मानव-विरोधी परिस्थितियों का विरोध करने की सामर्थ्य ही चुक जाती है।

मोहन राकेश की अन्य एकांकियों की अपेक्षा इसका रूपबंध थोड़ा शिथिल है, जो पात्रों के लम्बे वक्तव्यों ओर प्रसंगों को अधिक विस्तार देने के कारण है। अधिकांश स्थलों पर भाषा संवादधर्मी है तथा छोटे वाक्यों का प्रयोग किया है। लेकिन कहीं-कहीं रचनाकार ने अपने जीवन-दर्शन को अभिव्यक्त करने के लिए लम्बे वक्तव्यों का भी सहारा लिया है, जो निश्चय ही सार्थक नाटकीय युक्ति नहीं है। इससे एकांकी में बिखराव और शिथिलता ही आई है। विविध वर्ग के पात्रों के अनुरूप भाषा का स्वरूप भी अलग-अलग है। राम भरोसे और श्याम भरोसे निम्नवर्ग के प्रतिनिधि पात्र हैं,अतः उनकी भाषा में तद्भव और देशी शब्दों की प्रधानता है। अन्य पात्रों की भाषा अंग्रेजी मिश्रित हिन्दी है । अंग्रेजी शब्दों और वाक्यों का प्रयोग बाबू वर्ग की अनुकरणधर्मी संस्कृति का परिचय कराती है। वाक-आउट, आर्डर, जर्म्स, ड्राफ्ट, कैंसिल, वेलफेयर, चेयरमेन जैसे शब्द तथा 'आई डोंट माइंड', 'दिस इज टू मच', 'ही मीन्स हाउसेज फॉर लो ग्रेड वर्कज़' जैसे वाक्य पात्रों की सामाजिक स्थिति तथा वर्गीय चरित्र का रेखांकन करते हैं।

संपूर्ण एकांकी में हास्य की प्रच्छन्न धारा विद्यमान है, जो उसे रोचक मंचीय एवं पठनीय बनाती है। अनेक क्रिया-व्यापारों को भी कुशलतापूर्वक नियोजित किया गया है जो एकांकी को गति एवं तीव्रता प्रदान करते हैं। चाय बनाना, प्याली उठाकर चाय पीना, डस्टर से मेज ठोंकना, जेब से रूमाल निकालकर पसीना पोंछना, बाँह से पकड़कर कुर्सी पर बिठाना, डेस्कों पर हाथ मारते हुए शेम-शेम के नारे लगाना

इत्यादी ऐसी ही क्रियाएँ हैं जो घटना का सजीव चित्र उपस्थित करने के साथ-साथ नाटक को आगे बढ़ाने का काम करते हैं। इसके अलावा इस एकांकी में भी समय,स्थान और कार्य की अन्विति का पालन किया गया हैं, जो नाटक को मंचीय बनाता है।

समग्रतः यह कहा जा सकता है कि 'बहुत बड़ा सवाल' हर रोज आयोजित होनेवाली अनेक बैठकों की सार्थकता पर सवालिया निशान लगाता है। इसके साथ ही यह निम्नवर्गीय जीवन की अनेक समस्याओं को भी अभिव्यक्त करता है। एकांकी में वर्णित विषय आज भी उतना ही रोचक एवं प्रासंगिक है, जितना राकेश के युग में क्योंकि आज भी ऐसी अनेक बैठकें आयोजित हो रही हैं जो सिर्फ मन बहलाने का माध्यम और विविध लोगों की स्वार्थपूर्ति का माध्यम हैं। एकांकी के रूपबंध में थोड़ी शिथिलता होने के बावजूद यह विषयवस्तु को सफलतापूर्वक अभिव्यक्त करती है। हास्य की एक प्रच्छन्न धारा आद्यंत विद्यमान होने के कारण एकांकी रोचक एवं पठनीय बन पाई है।

(iv) बीज नाटकों - 'शायद' तथा 'हं:! ' की अन्तर्वस्तु एवं शिल्प :

'अंडे के छिलके' संग्रह में चार एकांकियों के अलावा दो बीज नाटक-'शायद' और 'हं:!'। तथा एक पार्श्व नाटक 'छतरियाँ' नाम से संकलित हैं। ये नाटक मूलतः एकांकी ही हैं लेकिन इनमें शब्दों और ध्वनियों को लेकर नए प्रयोग मिलते हैं अतः नाटककार ने इन्हें सामान्य एकांकी से भिन्न संज्ञा दी है। बीज नाटकों में नाटक का संपूर्ण कथा-सूत्र एक बीज शब्द से संचालित होता है जैसे 'शायद' शीर्षक बीज नाटक में एक दम्पत्ति के पूरे जीवन में व्याप्त संप्रेषणीयता का अभाव, चुनाव की पीड़ा और उदासी को व्यक्त किया गया है। पूरे नाटक का केन्द्रीय सरोकार कुछ न कर पाने की यंत्रणा और कुछ कर सकने की चाह है कि शायद कल जीवन को कोई अर्थ मिल सके। यह 'शायद' विकल्पहीनता की स्थिति और उससे उबरने की मनुष्य की अनवरत कोशिश को रेखांकित करता है। 'शायद' एक ऐसा बीज शब्द है जो नाटक की संपूर्ण चेतना में आद्यंत विद्यमान है और नाटक के क्रिया-व्यापार को संचालित करता है। इस शब्द की नाटक में अनेक बार पुनरावृत्ति होती है और केन्द्रीय स्वर के रूप में यह नाटक को आच्छादित किए हुए है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं :

"पुरूष : 'अच्छा देखो .. .. कल सुबह से .. .. कल से कोशिश करूँगा कि दफ्तर के काम में ही ज़्यादा दिलचस्पी लूँ। शायद उसी से थोड़े दिनों में .. .. कुछ दिन देखना चाहिए ट्राई करके।"[32]

X X X X X

"पुरूष : 'तुम्हें सोना नहीं है ?

स्त्री : अच्छा .. .. कल फिर बात करेंगे .. देखो शायद .. ..।"[33]

इस बीज नाटक में समकालीन जीवन की ऊब, उदासी, कुछ न कर पाने की विवशता एवं पति-पत्नी के बीच संवादहीनता की स्थिति को दर्शाया गया है। आधुनिक जीवन की इस जटिलता और संवादहीनता को राकेश ने अपनी अनेक रचनाओं का विषय बनाया है। राकेश के अधिकांश कथा-साहित्य में अस्तित्ववादी दर्शन की छाया नज़र आती है। यह नाटक भी मूलतः अस्तित्ववादी दर्शन से संचालित है जिसके अनुसार मनुष्य की मुक्ति दुर्लभ है। मनुष्य चाहता तो बहुत कुछ है लेकिन उसे वे सभी चीजें नहीं मिल पातीं। इस स्थिति में उसमें खीझ, उदासी, हताशा आदि मनःस्थितियाँ जन्म लेती हैं। 'शायद' नाटक के स्त्री और पुरूष पात्रों की स्थिति भी ऐसी ही है जिन्हें कोई भी चीज़ बाँधती नहीं है बल्कि पूरी जिन्दगी उन्हें एक निरर्थक पुनरावृत्ति प्रतीत होती है :

"पुरूष : '(थोड़ा आगे झुककर) ऐसा नहीं लगता कि जिन-जिन चीज़ों में खुशी मिला करती थी .. .. पहले .. .. अब उनमें से किसी चीज़ में खुशी रह ही नहीं गयी ?

स्त्री : मैंने तो सोच लिया है।

पुरूष : क्या ?

स्त्री : कि यह सब ऐसे ही हैं, इसलिए साल-दो-साल इसी तरह काट देने हैं।

स्वर कुछ रूआँसा हो जाता है।

पुरूष : लगता है हर चीज़ सिर्फ दोहरायी जा रही है। जो जी चुके हैं उसी को फिर से जी रहे हैं।"[34]

उपरोक्त उद्धरण से मनुष्य के अस्तित्व की निरर्थकता स्पष्ट नज़र आती है। इस नाटक में रचनाकार ने एक ऐसे व्यक्ति की छटपटाहट को दिखाया है जो जिन्दगी में कुछ ढूँढ रहा है, लेकिन उसे पता नहीं कि वह उसे कैसे प्राप्त करें ? इसीलिए कभी वह पहाड़ों पर जाना चाहता है तो कभी समुद्र के किनारे। कभी वह ऑफिस के कामों में ही दिलचस्पी लेने की बात सोचता है, तो कभी पत्नी के साथ छुट्टियाँ मनाने की। लेकिन जिन्दगी में खालीपन ज्यों का त्यों बना रहता है। इस प्रकार अस्तित्व की निरर्थकता और चुनाव की पीड़ा ही इस नाटक का केन्द्रबिन्दु है, जो राकेश की अनेक कहानियों और नाटकों का भी बुनियादी सरोकार रहा है।

यद्यपि विषयवस्तु के धरातल पर इस बीज नाटक में किसी प्रकार की नवीनता नहीं है, लेकिन शब्द और ध्वनि से संबंधित अनेक प्रयोग इसमें देखने को मिलते हैं। अपने जीवन के अंतिम दिनों में राकेश शब्दों और ध्वनियों को लेकर अत्यन्त सतर्क हो गए थे और इनसे संबंधित विविध प्रयोग करने में संलग्न थे। नेहरू फैलोशिप परियोजना के अंतर्गत कार्य करते हुए राकेश ने जो टिप्पणी लिखी है, वह शब्दों और ध्वनियों के प्रति उनकी सजगता को स्पष्ट करती है :

"समकालीन जीवन-स्थिति को अभिव्यक्त करनेवाली भाषा की तलाश। मिश्रित भाषा बोलनेवाले समाज में शब्दों का संयोजन। विश्रृंखलित समाज में विश्रृंखलित शब्द योजना।"[35]

राकेश के उपरोक्त नोट्स इस बात के प्रत्यक्ष प्रमाण है कि उनकी तलाश एक ऐसी भाषा की थी, जो समकालीन जीवन की विश्रृंखलता और हताशा को अभिव्यक्त कर सके। इसके लिए वे टूटे-फूटे शब्दों और वाक्यों से काम लेना चाहते थे। आधुनिक जीवन के ऊब भरे वातावरण, संवादहीनता और अनिश्चय की स्थिति को व्यक्त करने के लिए इस नाटक में भी टूटे-फूटे वाक्यों, शब्दों की पुनरावृत्ति और शब्दों के बीच रिक्त स्थान जैसी नाटकीय युक्तियों का सहारा लिया गया है :

"स्त्री : .. .. क्या नाम था उसका .. .. याद ही नहीं .. ..।

पुरूष : .. .. उन चीजों में, उन लोगों में, जिन्हें वह नहीं जानता। पर जब उन्हें भी जाना जाता है .. ..।

स्त्री : .. .. तुम्हें याद है, वह वहीं ली थी हमने .. .. जब कहाँ गये थे .. .. सूरत ?

पुरूष : .. .. तो पता चलता है कि कहीं कुछ नहीं है .. .. कहीं कुछ है ही नहीं।

स्त्री : और क्या है ही नहीं।

पुरूष : तो ऐसे में क्या करे आदमी ?

स्त्री : क्या करे ? .. .. बस जीता जाय। .. .. अगर इस बार गये न सूरत .. ..।

पुरूष : जीता जाय । .. .. ओह ।"[36]

यहाँ वाक्यों के बीच का रिक्त स्थान, प्रश्नवाचक और विराम चिन्ह एक ओर अभिनयकला को विस्तार देते हैं तो दूसरी ओर समकालीन जीवन की जटिलता, अन्तर्द्वन्द्व और अनिश्चय को भी व्यक्त करते हैं। यही नहीं स्त्री और पुरूष के असम्बद्ध वाक्य दोनों के बीच संबंधहीनता और उदासीनता को भी उद्घाटित करते हैं। इसके लिए नाटककार ने विभिन्न क्रियाओं का भी नियोजन किया है, जो अनकहे शब्दों में बहुत कुछ कह देती है। शिकायत की नज़र से स्त्री को देखना, उसाँस छोड़ना, निराश स्वर में बात करना, निढाल सा आराम कुर्सी पर बैठना, जेबों में हाथ डाले इधर-उधर घूमना इत्यादि क्रियाएँ शब्द से कम नहीं है। इन क्रियाओं से निराशा, क्षोभ, उदासीनता की स्थिति पूरी तरह स्पष्ट हो जाती है। यही नहीं पुरूष द्वारा प्रयुक्त एक छोटा-सा अव्यय 'हूं' स्त्री के प्रति उसकी असम्बद्धता और उपेक्षा की मनःस्थिति को मूर्त कर देता है।

बहुत से स्थलों पर शब्द अपनी भाषागत सीमा का अतिक्रमण करते हैं तथा उनका अर्थविस्तार हो जाता है। 'शायद' एक ऐसा ही शब्द है जो कुछ कर सकने की आकांक्षा तथा न कर पाने के दर्द को एक साथ अभिव्यक्त करता है। इस नाटक में भाषा के विविध रूपों के दर्शन नहीं होते क्योंकि नाटक के सभी पात्र एक ही मनःस्थिति और परिवेश से संबंधित हैं।

समग्रतः यह कहा जा सकता है कि राकेश का बीज नाटक 'शायद' अपनी विषय-वस्तु की नवीनता के कारण नहीं बल्कि शब्दों और ध्वनियों से संबंधित विविध प्रयोगों के कारण उल्लेखनीय है।

इसी संग्रह में संकलित राकेश का एक अन्य बीज नाटक है - 'हंः!'। इस नाटक में 'पपा ' पूरे दो साल .. .. दो महीने .. .. बीस दिन से बिस्तर पर पड़े है - इस दौरान उन्होंने अपना सब कुछ बिखरते देखा है। बेटा जहाँगीर अपनी चिट्ठियों में पपा को वेलफेयर होम भेजने की सलाह देता रहता है तो बेटियाँ शहर में होकर भी कभी पपा का हाल जानने की कोशिश नहीं करतीं। इतने दिनों की लम्बी बीमारी में सभी जान-पहचान वाले धीरे-धीरे किनारा कर गये हैं, आर्थिक बदहाली ने अलग परेशान कर रखा है ऐसे में बस एक पत्नी ही है जो किसी न किसी तरह रो-धोकर घर चला रही है। अपनी स्थिति और परिवार और समाज के प्रति पपा की सारी कडवाहट 'हंः!' में सिमट गई है। यही वह बीज ध्वनि है जिसके चारों ओर नाटक की कथावस्तु बुनी गई है। ममा का यह संवाद परिवार और समाज की संवेदनहीनता को पूरी ईमानदारी से उद्घाटित करता है :

"ममा : 'बेटा लंदन में है .. .. तीन साल हो गये उसकी शक्ल देखे। बेटियाँ कहने को शहर में हैं .. .. पर महीना - महीना भर उनकी भी शक्ल नज़र नहीं आती। और जो लोग पहले मिलने आ जाते थे उनमें से भी अब कोई नहीं आता। (रूमाल से पपा का मुँह पोंछती हुई) जैसे डर लगता है हर एक को कि .. ..। "[37]

इतने लम्बे समय से बिस्तर पर पड़े पपा के लिए समय का महत्व ही जैसे खत्म हो गया है उन्हें तो कल और आज का फर्क भी ध्यान नहीं रहता। आज उन्हें अपने दर्द को कम करने के लिए एक सर्जिकल बेड की सख्त जरूरत है पर पैसों का इंतज़ाम न होने के कारण वह नहीं आ पा रहा । ममी और पापा न जाने कितनी बार जोड़ चुके हैं कि उन्हें कितने पैसे की आवश्यकता है। उनका यह संवाद लम्बी बीमारी के प्रभाव को दर्शाता है जो व्यक्ति की कमर तोड़ देता है :

"ममा : '.. .. देखो, अगर रिशी आ गया आज न, तो मैं जरूर ले आऊँगी तुम्हारे लिए जाकर .. .. सर्जिकल बेड।

एक तो इतना पैसा माँगते हैं ये लोग ज़रा सी चीज़ का !

पपा : हंः!।

ममा : सौ रूपया एडवांस .. .. चालीस रूपया निकलवाकर लाने का .. .. और पचास रूपया पहले महने का भाड़ा .. .. कुल।

पपा : एक सौ नब्बे रूपया। दस कम दो सौ। तुम इतनी ही बार गिन चुकी हो।

ममा : खैर, वह बैड आ जाये तो तुम ढीले स्प्रिंगों से तो बच ही जाओगे और .. ..।

पपा : इस गिनती से भी।

ममा : पपा !

पपा : बचपन में यह गिनती मुझे इस तरह याद नहीं थी जिस तरह अब याद है। सौ जमा चालीस, एक सौ चालीस। एक सौ चालीस जमा पचास।

ममा : पपा !

पपा : मैं इसे उलटा भी गिन सकता हूँ।"[38]

आर्थिक परेशानी, पपा की हालत एवं बच्चों की बेरूखी ने ममा को काफी हद तक तोड़ दिया है, उनकी खीझ, आक्रोश और उदासी नौकर जमशेद को बात-बेबात पड़ती डाँट में देखी जा सकती है। इस उबलते हुए आक्रोश के पीछे कहीं गहरी उदासी छिपी है। नौकर, वह एक मात्र साधन है जिसपर बरसकर, गरजकर वह अपने भीतर का गुबार निकाल सकती हैं। पपा की बीमारी ने उन्हें भी कहीं न कहीं बीमार बना दिया है। पपा को शारीरिक कष्ट ने जितना नुकसान पहुँचाया है उससे ज्यादा प्रभावित किया है उनके अपनों की उपेक्षा ने। इस उपेक्षा ने उन्हें बहुत शुष्क और कड़वा बना दिया है :

"पपा : पपा अब कूड़ा हो गया है। इसे डस्ट बिन में फेंक देना चाहिए।"[39]

ममा स्थिति की भयावहता को किसी तरह झेल रही है। कोई उसे महीने का खर्च नहीं भेजता, कोई नहीं पूछता कि कैसे वह इस घर को चला रही है पर वह भी अब हार गई है उससे भी नहीं हो पा रहा सब कुछ - पर क्या करे, उसके पास स्थिति को झेलने के सिवा, दूसरा उपाय भी क्या है ? ममा का यह कथन कि : "सिर्फ अपने से ही वास्ता है हमें .. .. और किसी से वास्ता ही नहीं। "[40] सिर्फ नौकर पर ही नहीं आधुनिक जीवन में हर एक मनुष्य पर लागू होता है।

पपा के मुँह से, उनकी कराह से जो दर्द भरी ध्वनि 'हं:!'। निकलती है वह परिवार और समाज के प्रति उनकी समस्त कड़वाहट को जताती है और यही कारण है कि इस बीज ध्वनि की पुनरावृत्ति नाटक में कई बार हुई है।

शिल्प के धरातल पर इस नाटक में राकेश के प्रयोगधर्मी व्यक्तित्व के अनेक आयाम देखने को मिलते हैं। विविध ध्वनियों के रचनात्मक प्रयोग द्वारा नाटक को प्रभावशाली बनाया गया है यथा : 'लकड़ी के जीने से ऊपर चढ़ने का स्वर', 'साँस

के उठने और गिरने का स्वर', 'कबर्ड खोलने और बन्द करने की आवाज़', 'प्यालियाँ टूटने की आवाज़', 'पेड़ों की सरसराहट', 'लहरों की ध्वनि' आदि। राकेश नाटक को मूलतः एक श्रव्य माध्यम मानते थे अतः ध्वनि एवं शब्दों का संयोजन उनके लिए बहुत महत्वपूर्ण था। 'पपा' के मुँह से कराहने के साथ निकलनेवाली अज़ीबोगरीब आवाजें, लोगों की उनके प्रति असंवेदनशीलता का प्रत्युत्तर हैं 'फूः फूः फूः, ओह ! ओह ! हुश, हुश, हुश, अ - अ - अ- ह - ह-, हूड-हूड-हूड, और हंः! इस तरह की तमाम आवाजें उनकी प्रयोगशीलता का ही परिणाम थीं और ये आवाजें मनुष्य की आदिम वृत्ति का भी सूचक है। इतना निरादर पाने के बाद पपा में निराशा की भावना घर कर गई है। यह निराशा ही नाटक के अंत में 'अँधेरे' के रूप में सभी कुछ को घेर लेती है। पात्र-योजना बेहद संक्षिप्त है, टूटे हुए पापा, थकी हारी ममा, और कैथार्सिस या गुबार के निकाल का आलम्बन जमशेद। वाक्यों में बिखराव, शब्दों की पुनरावृत्ति, अन्तराल, विराम-चिन्हों एवं प्रश्न-चिन्हों का प्रयोग अधूरे अपूर्ण वाक्य उनके जीवन की ऊब और घुटन को आकार देते हैं। संवाद छोटे-छोटे ही हैं केवल ममा के कुछेक संवादों को छोड़कर और इनकी संक्षिप्तता, नाटकीय अन्तर्वस्तु को अधिक सघन रूप से उभारती है।

इस नाटक की विषय वस्तु आज भी बेहद अनिवार्य लगती है। लंबी बीमारी, बीमारी पर होनेवाला खर्चा, समय के अन्तराल के साथ छोटी होती मिलने वालों की कतार, परिवार के सदस्यों की उपेक्षा, जीवन की जटिलता और समय की कमी की वजह से बढ़ती हुई असंवेदनशीलता, शारीरिक बीमारी को धीरे-धीरे मानसिक रोग में तब्दील कर देती है, व्यक्ति बहुत अकेला हो जाता है। इसी अकेलेपन में चलता रहता है उसका आत्ममंथन और समय उसके लिए अपना महत्व खो देता है। वह व्यक्ति जो इस बीमार की तीमारदारी करता है वह भी इन सभी स्थितियों को रोज जीता है और इसलिए वह खुद भी इसी ऊब, घुटन और कुंठा से ग्रस्त हो जाता है। यह स्थिति आज भी उतनी ही सच और प्रासंगिक है जितनी राकेश के समय में थी और इसी वजह से यह बीज नाटक आज भी प्रासंगिक है।

(v) पार्श्व नाटक - 'छतरियाँ' की समीक्षा :

'अंडे के छिलके' संग्रह में संकलित अंतिम रचना है - 'छतरियाँ', जिसे पार्श्व नाटक की संज्ञा प्रदान की गई है। इसमें मंच से पात्रों द्वारा संवाद बहुत कम बुलवाये गये हैं बल्कि छोटे-बड़े संवादों और ध्वनियों का पार्श्व या नेपथ्य से विधान किया गया है। संभवतः इसको पार्श्व नाटक कहा गया क्योंकि इसमें पार्श्व से आने वाली ध्वनियों और संवादों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।

नाटक में मूलतः आधुनिक जीवन के शोर में व्यक्ति की उपेक्षित अस्मिता को अभिव्यक्त किया गया है। आज के नामहीन, आकारहीन व्यक्ति का कुकुरमुत्ते जैसे उगे, अपने जीवन एवं अस्तित्व के प्रति असंतोष व्यक्त किया गया है। मानव अस्तित्व

की निरर्थकता ही वह केन्द्रीय बिन्दु है जिससे संपूर्ण नाटक संचालित होता है। नाटक के अंत में 'भरत-वाक्य' के माध्यम से रचनाकार ने मानव अस्तित्व की निरर्थकता को स्पष्ट रूप से रेखांकित किया है :

भरत वाक्य :

"भाषा नहीं, शब्द नहीं, भाव नहीं,
कुछ भी नहीं।
मैं क्यों हूँ ? मैं क्या हूँ ?
जिज्ञासाएँ डसती हैं बार-बार
कब तक, कब तक, कब तक इस तरह ?
क्यों नहीं और किसी भी तरह ?
आकारहीन, नामहीन
कैसे सहूँ, कब तक सहूँ
अपनी यह निरर्थकता ?
जीवन को छलता हुआ, जीवन से छला गया ।
कैसे जीऊँ, कब तक जीऊँ,
अनायास उगे कुकुरमुत्ते - सा ?
पहचान मेरी कोई भी नहीं आज तक।
लुढ़कता एक ढेले-सा
नीचे, नीचे और नीचे
मैं क्या हूँ ? मैं क्यों हूँ ? "[41]

विभिन्न प्रकार की राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक विचारधारा के बीच आज का सामान्य मनुष्य कहीं अनचीन्हा ही रह जाता है और समकालीन समाज में विभिन्न विचार धाराओं का शोर ही मुख्य भूमिका में नज़र आता है। वर्तमान युग में ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो चुकी हैं जिसमें अपनी नियति के सूत्र मनुष्य के हाथों से निरंतर छूटते जा रहे हैं और वह दिनोंदिन व्यर्थ होता जा रहा है। यह मानवीय संकट केवल किसी एक देश या समाज का नहीं है, बल्कि समस्त संसार में विभिन्न रूपों में व्याप्त है।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अधिकांश पाश्चात्य साहित्य में इस मानव-स्थिति की निरर्थकता का बार-बार उल्लेख मिलता है। स्वातंत्र्योत्तर भारत में भी मानव विरोधी राजनीतिक एवं सांस्कृतिक शक्तियों की केन्द्रीय भूमिका के कारण मनुष्य में यह

व्यर्थता और हताशा की भावना उत्पन्न हुई जिसे स्वाधीन भारत के अनेक रचनाकारों ने अभिव्यक्त किया।

विषय वस्तु से अधिक यह रचना अपने प्रयोगधर्मी रंगशिल्प की वज़ह से जानी गई। शब्दों और ध्वनियों को लेकर राकेश का अतिशय लगाव इस रचना में स्पष्ट नज़र आता है। इसमें बेतरतीब, बेतुकी और टूटी-फूटी भाषा का प्रयोग किया गया है। दरअसल विश्रृंखलित मनुष्य और अस्तव्यस्त समाज की मानसिकता को टूटी-फूटी और बेतरतीब भाषा के माध्यम से ही विश्वसनीय ढंग से अभिव्यक्त किया जा सकता है। नेहरू फैलोशिप परियोजना के अन्तर्गत 'नाटकीय शब्द' विषय पर काम करते हुए राकेश ने जो नोट्स लिखे हैं, वह ध्वनियों और भाषा के प्रति उनके मन्तव्य को स्पष्ट करते हैं :

".. .. विश्रृंखलित समाज के लिए टूटी-फूटी शब्द योजना ।

जीने की भाषा। यथार्थ की विसंगति,

निरर्थक प्रतीत होने वाले शब्दों की अर्थवत्ता। शब्द और अर्थ से सर्जनात्मक खिलवाड़ के विविध आयाम।"[42]

राकेश के उपरोक्त नोट्स इस बात को स्पष्ट करते हैं कि वे समकालीन समाज और मनुष्य की अस्तव्यस्त जिंदगी और निरर्थकता को एक नई शब्द और ध्वनि-योजना के माध्यम से आकार देना चाहते थे। यही कारण है कि उन्होंने अपने पार्श्व नाटक 'छतरियाँ' में एक ऐसी भाषा का प्रयोग किया है जिसका आधार है बेतरतीब, बेतुकी, टूटी-फूटी ध्वनियाँ और उनसे बननेवाली शब्द योजना। दरअसल यह भाषा 'एबसर्ड' नाटकों का सा आभास देती है :

"हमारी आवाज़ .. .. टेस्टिंग टेस्टिंग .. अँधेरे में एक चीख है। यह चीख .. .. टेस्टिंग टेस्टिंग टेस्टिंग .. .. अँधेरे की छाती चीरकर .. .. टेस्टिंग एक नयी रोशनी ला सकती है। आज से पहले भी जब कभी यह चीख उठी है .. .. टेस्टिंग टेस्टिंग .. .. उसने अँधेरे की ताकतों को .. .. टेस्टिंग टेस्टिंग टेस्टिंग .. .. दहलाकर रख दिया है।"[43]

उपरोक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि शब्दों और ध्वनियों से संबंधित विविध प्रयोगों का विधान, जो बीज नाटकों में मिलता है, उसकी चरम परिणति राकेश के पार्श्व नाटक 'छतरियाँ' में देखने को मिलती है। इस नाटक में कोई पात्र नहीं है, बल्कि विविध प्रकार की ध्वनियाँ ही विभिन्न पात्रों का प्रतिनिधित्व करती हैं। भारी मशीन की आवाज़, गोली दागने की आवाज़, गाली फुसफुसाने की आवाज़, हमले के साइरेन की आवाज़, धमाके की आवाज़, उपदेश का स्वर, रेडियो एनाउंसर की आवाज़, धीमी लय में कीर्तन का स्वर इत्यादि विविध असम्बद्ध ध्वनियों के द्वारा अराजक परिवेश और उनके बीच मनुष्य की असम्बद्धता को साकार किया गया है। यही नहीं इस नाटक में प्रतिध्वनियों का भी रचनात्मक प्रयोग किया गया है। ध्वनियों के अलावा इस पार्श्व नाटक में विविध प्रकार की गतियों को भी नियोजित किया गया है, जो नाटकीय

क्रिया व्यापार को आगे बढ़ाने का कार्य करती है तथा मनुष्य की मानसिक स्थिति को भी रेखांकित करती हैं। 'एक-एक झटके से पेंच की तरह घूमना' मनुष्य की यांत्रिक स्थिति का परिचय देता है, तो छतरी को अभिलाषा के साथ छूना उसकी आकांक्षा का द्योतक है। छतरी को भींचकर काँपते हुए आदमी के हाथ का रूक जाना मनुष्य की असहाय स्थिति का संकेत करता है तो जोर से चिल्लाना और आवेश में हाथों को झटकना उसकी निराशा एवं खीज का। तीव्र और धीमी गति की इस प्रकार की अनेक क्रियाएँ नाटक में संयोजित हैं, जो मनुष्य की परिवर्तित मनःस्थिति का परिचय देने के साथ-साथ नाटक को गति भी प्रदान करती हैं। कहीं फिरकी की तरह तेज गति की क्रिया है, तो कहीं धीमी गति से चलनेवाली लड़ाई। ये विविध क्रियाएँ स्वतः संपूर्ण प्रसंग हैं, जो नाटक में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं। शब्दों और ध्वनियों की बार-बार आवृत्ति विविध प्रकार की विचारधाराओं के कोलाहल और उसमें मनुष्य के अकेले रह जाने की नियति को स्पष्ट करता है। लेकिन शब्दों और ध्वनियों पर आधारित विविध प्रयोग रचनात्मक रूप नहीं ले पाते तथा नाटक की अन्तर्वस्तु को सफलतापूर्वक अभिव्यक्त नहीं कर पाते।

समग्रतः नाटक की अन्तर्वस्तु अस्पष्ट है और रंगशिल्प के स्तर पर किये गए विविध प्रयोग रचनात्मक नाटकीय युक्ति के रूप में परिवर्तित नहीं हो पाते। यह मूलतः प्रयोगात्मक नाटक है, जो विषय-वस्तु की अनिवार्यता और रंगशिल्प की रचनात्मकता के कारण महत्वपूर्ण नहीं है, बल्कि उसे नाटकीय प्रयोग के उदाहरण के तौर पर ही अधिक याद किया जाएगा।

(vi) निष्कर्ष एवं मूल्यांकन :

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि विविध एकांकियों, बीज नाटकों तथा पार्श्व नाटक मोहन राकेश के बहुआयामी प्रतिभा के प्रमाण हैं। शब्दों और ध्वनियों को लेकर राकेश में जो अतिशय लगाव था, उसकी परिणति बीज नाटकों तथा पार्श्व नाटक 'छतरियाँ' में सहज ही लक्षित की जा सकती है। कई एकांकियों और ध्वनि नाटकों में न केवल मानव जीवन की प्रमुख समस्याओं को अभिव्यक्त किया गया है, बल्कि रंगशिल्प के स्तर पर भी ये रचनाकार की सर्जनात्मक प्रतिभा का परिचय देती है। दरअसल ये एकांकियाँ बीज नाटक और पार्श्व नाटक राकेश के बहुस्तरीय नाट्यलेखन के समर्थ उदाहरण हैं और इनके बिना नाटककार का मूल्यांकन अपूर्ण ही रहेगा।

संदर्भ सूची :

1 रात बीतने तक तथा अन्य ध्वनि नाटक : मोहन राकेश, पृ.11

2 उपरोक्त : पृ.13

3 उपरोक्त : पृ.14

4 उपरोक्त : पृ.15

5 उपरोक्त : पृ.16

6 उपरोक्त : पृ. 22

7 रात बीतने तक तथा अन्य ध्वनि नाटक : मोहन राकेश (कुँवारी धरती) पृ.65

8 उपरोक्त : पृ.75

9 साहित्य और संस्कृति : मोहन राकेश (डॉ. कार्लो कपोला और मोहन राकेश) पृ. 153

10 रात बीतने तक तथा अन्य ध्वनि नाटक : मोहन राकेश (कुँवारी धरती), पृ.79

11 उपरोक्त : पृ.75

12 उपरोक्त : पृ.76

13 उपरोक्त : पृ.82

14 रात बीतने तक तथा अन्य ध्वनि नाटक : मोहन राकेश (उसकी रोटी) पृ. 93

15 उपरोक्त : पृ. 87

16 रात बीतने तक तथा अन्य ध्वनि नाटक : मोहन राकेश (सुबह से पहले) पृ. 58

17 उपरोक्त : पृ. 1

18 रात बीतने तक तथा अन्य ध्वनि नाटक : मोहन राकेश (दूध और दाँत) पृ. 161

19 रात बीतने तक तथा अन्य ध्वनि नाटक : मोहन राकेश (आखिरी चट्टान तक) पृ. 165

20 उपरोक्त : पृ. 169

21 अण्डे के छिलके, अन्य एकांकी तथा बीज नाटक : मोहन राकेश (अण्डे के छिलके) पृ. 25 -26

22 अण्डे के छिलके, अन्य एकांकी तथा बीज नाटक : मोहन राकेश (अण्डे के छिलके) पृ. 11

23 अण्डे के छिलके, अन्य एकांकी तथा बीज नाटक : मोहन राकेश (सिपाही की माँ), पृ. 32

24 उपरोक्त : पृ. 45

25 उपरोक्त : पृ. 31

26 साहित्य और संस्कृति : मोहन राकेश (डॉ. कार्लो कपोला और मोहन राकेश) पृ. 133

27 अण्डे के छिलके, अन्य एकांकी तथा बीज नाटक : मोहन राकेश (प्यालियाँ टूटती हैं !) पृ. 55-59

28 उपरोक्त : पृ. 52-53

29 अण्डे के छिलके, अन्य एकांकी तथा बीज नाटक : मोहन राकेश (बहुत बड़ा सवाल) पृ. 101-102

30 उपरोक्त : पृ. 84-85

31 उपरोक्त : पृ. 85-86

32 अण्डे के छिलके, अन्य एकांकी तथा बीज नाटक : मोहन राकेश (शायद) पृ. 107

33 उपरोक्त : पृ. 121

34 उपरोक्त : पृ. 115

35 Discovering a language of the present day mood. Associations of words in a society speaking a mixed language. Fragmented words in a fragmented society.

The Nehru felloship project : The dramatic word,

Enact - 73-74

36 अण्डे के छिलके, अन्य एकांकी तथा बीज नाटक : मोहन राकेश (शायद) पृ.117

37 अण्डे के छिलके, अन्य एकांकी तथा बीज नाटक : मोहन राकेश ('हंः!'), पृ. 136

38 उपरोक्त : पृ. 127-128

39 उपरोक्त : पृ. 132

40 उपरोक्त : पृ. 140

41 अण्डे के छिलके, अन्य एकांकी तथा बीज नाटक : मोहन राकेश (छतरियाँ) पृ. 160

42 ".. .. Fragmented words in a fragmented society. The language of 'being', the absurdities of reality, the meaningful meaningless words, The aspect of creative distortion of words and meanings"

The Nehru fellowship project, the Dramatic word,

Enact 73-74

43 अण्डे के छिलके, अन्य एकांकी तथा बीज नाटक : मोहन राकेश (छतरियाँ) पृ. 158